वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५७ अंक ८
अगस्त २०१९

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक ८

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. श्रीकृष्ण-वन्दना ३३९
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ३३९
३. सम्पादकीय : वसुन्धरा पर धधक रही - स्वतन्त्रता की आगी ३४०
४. स्वतन्त्रता के लिए जो हँसते-हँसते बलिदान हुए (डॉ श्रीलाल) ३४२
५. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३२) ३४७
६. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/३) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ३४९
७. साधुओं के पावन प्रसंग (८) (स्वामी चेतनानन्द) ३५२
८. (भजन एवं कविता) धन्य ब्रज भूमि पद चूमत कन्हैया के (स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती) तुलसी विलक्षण सन्त हैं (कमलसिंह सोलंकी) जय-जय-जय महाकाल (पुरुषोत्तम नेमा) ३५४
९. (बच्चों का आँगन) मुझे परमवीर चक्र चाहिए (स्वामी पद्माक्षानन्द) ३५५
१०. धर्म और विज्ञान : एक विश्लेषण (स्वामी आत्मानन्द) ३५७
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (८२) (स्वामी सुहितानन्द) ३५९
१२. (प्रेरक लघुकथा) संस्कृत सब भाषा की जननी (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ३६०
१३. (युवा प्रांगण) समय को पहचानो (स्वामी ओजोमयानन्द) ३६१
१४. सबके देव : गुरु नानक देव (अजय कुमार पाण्डेय) ३६५
१५. स्वामी विवेकानन्द : भारतीय स्वतन्त्रता और समृद्धि के क्रान्तिकारी (स्वामी निखिलात्मानन्द) ३६७
१६. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२०) (स्वामी अखण्डानन्द) ३७२

१७. (भजन) राम-नाम रस सबते भारी
(भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') ३७३
१८. भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्य
(शरत् चन्द्र श्रोत्रिय) ३७४
१९. आध्यात्मिक जिज्ञासा (४४)
(स्वामी भूतेशानन्द) ३७६
२०. मानसिक शुद्धि हेतु साधना
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ३७८
२१. भारतीय युवा: मेरी आशा के केन्द्र
(डॉ.एस.एन.सुब्बा राव) ३७९
२२. (कविता) युवा शक्ति से ही होता
राष्ट्र महान (प्राचार्य ओ.सी.पटले) ३८०
२३. दृग्-दृश्य-विवेक: (३) ३८१
२४. समाचार और सूचनाएँ ३८२

आवरण पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह भव्य प्रतिमा रामकृष्ण सेन्टर, साउथ अफ्रिका, लेडीस्मीथ का है।

अगस्त माह के जयन्ती और त्योहार

१५ स्वतन्त्रता दिवस, रक्षा बन्धन
१५ स्वामी निरंजनानन्द
२४ कृष्ण जन्माष्टमी
२९ स्वामी अद्वैतानन्द

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अश्वनी पारीक, जयपुर (राजस्थान)	४,५००/-
श्री चिन्मय एन. बावनकर भंडारा (महा.)	१,०००/-
...	१,१००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है । इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं । श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है ।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५६ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है । आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें । – **व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५६५. श्री अनुराग, (स्मृति में श्रीरामराज एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	शा. रामानुजप्रताप सिंह देव पी.जी महा., बैकुंठपुर, कोरिया
५६६. ,, ,,	गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक कॉलेज, खुनीमाजरा, मोहाली (पंजाब)
५६७. ,, ,,	नार्थ लखीमपुर कॉलेज, खेलमाटी, जि.-लखीमपुर (असम)
५६८. श्री नीरज वसंत दापके, भरत नगर, नागपुर (महा.)	शा. कान्ती कुमार भारतीय महाविद्यालय, जि.जांजगीर-चांपा
५६९. श्री अनुराग, (स्मृति में श्रीरामराज एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, टीमरनी, जिला - हरदा (म.प्र.)
५७०. ,, ,,	गवर्नमेंट सरकाघाट कॉलेज, सरकाघाट, जि. मंडी (हि.प्र.)
५७१. ,, ,,	गवर्नमेंट कॉलेज,सरदार शहर रोड, जिला-चुरु (राज.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५७ अगस्त २०१९ अंक ८

श्रीकृष्ण वन्दना

हृदम्भोजे कृष्णः सजलजलदश्यामलतनुः,
सरोजाक्षः स्रग्वी मुकुटकटकाद्याभरणवान्।
शरद्राकानाथप्रतिमवदनः श्रीमुरलिकां,
वहन्ध्येयो गोपीगणपरिवृतः कुङ्कुमचितः।।

– जिनके शरीर की कान्ति सजलमेघ के समान श्याम वर्ण की है, जिनके कमलनयन हैं, जो वनमालाविभूषित मुकुट, कटक, केयूर आदि आभरणों से अलंकृत हैं, शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर जिनके मुख का सौन्दर्य है, जो श्रीमुरली के वादक हैं, जो केशर चन्दन से चर्चित और गोपियों से घिरे हुए हैं, ऐसे श्रीकृष्ण का हमें सदा ध्यान करना चाहिए।

पयोम्भोधेर्द्वीपान्मम हृदयमायाहि भगवन्,
मणिव्रातभ्राजत्कनकवरपीठं भज हरे।
सुचिह्नौ ते पादौ यदुकुलज नेनेज्मि सुजलै,
गृहाणेदं दूर्वाफलजलवदर्घ्यं मुररिपो।।

– हे भगवन्! क्षीरसागर के द्वीप से शीघ्र ही मेरे हृदय में आइये। हे हरे! यह अनेक मणियों से सुसज्जित, स्वर्णनिर्मित मेरा सिंहासन है, इसे आप सुशोभित कीजिये। हे यदुकुल में उत्पन्न होनेवाले यदुनाथ! सर्वलक्षणसम्पन्न सुन्दर आपके चरण-कमलों को मैं धोना चाहता हूँ। हे मुररिपो! यह दूर्वा, फल व जलादि से युक्त अर्घ्य आप ग्रहण कीजिये।

पुरखों की थाती

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति।।६४७।।

– मनुष्य को प्रतिदिन अपने चरित्र का आकलन (मूल्यांकन) करना चाहिये कि मेरा कौन-सा आचरण पशुतुल्य हुआ है और कौन-सा महापुरुषों के समान।

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्र-स्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम्।।६४८।।

– महापुरुषों का सान्निध्य भला किसकी उन्नति नहीं करता। कमल के पत्ते पर पड़ी हुई जल की बूँद भी मोती के दाने के समान सुशोभित होती है।

मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्
चिन्ता समं नास्ति शरीरशोषणम्।
मित्रं विना नास्ति शरीरतोषणम्
विद्या विना नास्ति शरीरभूषणम्।।६४९।।

– व्यक्ति के शरीर का पोषण करनेवाला माता के समान दूसरा कोई भी नहीं है, उसके शरीर को सुखानेवाला चिन्ता के समान अन्य कुछ भी नहीं है, उसके शरीर को सन्तोष देनेवाला मित्र के बिना दूसरा कोई नहीं है और उसके देह को आभूषित करनेवाला विद्या के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है।

सम्पादकीय

वसुन्धरा पर धधक रही – स्वतन्त्रता की आगी

भारतीय संस्कृति के, भारतीय वाङ्मय के प्राण वेद और उपनिषद हैं। उनमें राष्ट्रीय समृद्धि के लिए बड़ी सुन्दर प्रार्थना की गई है। यजुर्वेद के ऋषि बड़ी सुन्दर प्रार्थना करते हैं – **आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधि महारथो जायताम्।। (यजुर्वेद २.२२)** – अर्थात् हमारे राष्ट्र में शूर-वीर, साहसी, शस्त्र संचालन में दक्ष, निपुण एवं महारथी सैनिक उत्पन्न हों। अर्थात् हमारी धरती माता शूर-वीरों की जन्मदात्री हो। भारत भूमि त्यागी-तपस्वी, ऋषि-मुनियों की तपोभूमि है। महान आदर्शवादी शूर-वीर राजाओं की भूमि है। राज्य के प्रति निष्ठावान महामंत्रियों की भूमि है। राज्य की सुरक्षा हेतु हँसते-हँसते अपने जीवन का बलिदान करनेवाले सैनिकों की भूमि है। राष्ट्र की संस्कृति, कला को संरक्षित करनेवाले समर्पित कलाकारों की भूमि है। राष्ट्र की प्रजा को, राष्ट्र के युवकों को नैतिकता, सदाचार और देशभक्ति की शिक्षा देनेवाले आचार्यों की भूमि है।

भारत सैकड़ों वर्षों पूर्व मुगल-शासकों और अंग्रेजों के अधीन रहा। जहाँ एक ओर अपनी सुख-सुविधा, स्वराष्ट्रनिष्ठाहीनता और कायरता के कारण कई राजाओं ने मुगलों और अँग्रेजों का साथ देकर अपने ही देश के अन्य राजाओं, प्रजाओं के साथ अत्याचार किया, उनकी आन-मान-शान को रौंदा, यहाँ तक कि उनकी निर्मम हत्या कर कितने अबोधों को अनाथ बना दिया, वहीं दूसरी ओर राजस्थान की पावन मिट्टी से प्रसूत महाराणा प्रताप, महाराष्ट्र के शिवाजी और बिहार के कुँवर सिंह ने अपने वीर सैनिकों, महामंत्रियों के सहयोग से कभी किसी विदेशी आक्रान्ता के सामने सिर नहीं झुकाया, अपने कुल के गौरव, देश की प्रजा और गौरवमयी संस्कृति की रक्षा की।

राजस्थान में प्रवेश करने पर वहाँ की मिट्टी में महाराणा प्रताप के प्रताप का सौरभ स्पष्ट प्रतीत होता है। राजस्थान का कण-कण राणा प्रताप के प्रताप के सुगन्ध से सुरभित है। कुम्भलगढ़, उदयपुर, चितौड़ और चावण्ड के महल आज भी राणा प्रताप की गाथा और वीरता का संदेश दे रहे हैं। हल्दीघाटी की रणभूमि आज भी क्रूर अकबर से मेवाड़ को बचाने के लिए राणाप्रताप के रणकौशल और संघर्ष को दर्शा रही है। वहाँ की पहाड़ियाँ और घाटियाँ आज भी वहाँ के वीर निष्ठावान आदिवासियों द्वारा मेवाड़ की रक्षा और मेवाड़ के राजा के प्रति निष्ठा हेतु किए गए त्याग और बलिदान का गौरव-गान कर रही हैं। धन्य हैं वीर वसुन्धरा भारत के वीर सपूत महाराणा प्रताप! जिन्होंने अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु जंगलों की खाक छानी, महलों में अपनों से और महल के बाहर मुगल और मुगल-समर्पित अन्य भारतीय राजाओं से संघर्ष किया, अत्याचारी छली मुगल अकबर की बड़ी सेना से अपनी छोटी सेना लेकर भी युद्ध किया, किन्तु कभी उसकी पराधीनता स्वीकार नहीं की, सदैव जीवन के अन्त तक विजयी रहे। आज भी उनकी समाधि से स्वतन्त्रता और गौरव की ज्वाला प्रकट हो रही है। किसी कवि ने प्रताप के सम्बन्ध में कहा है –

रक्षा की तलवार उठाकर समर किया लाखों से।
पोंछ दिए आँसू प्रताप ने माता की आँखों से।।
निकल रही जिसकी समाधि से स्वतन्त्रता की आगी।
यही कहीं पर छिपा हुआ है वह प्रताप वैरागी।।

पन्ना धाय ने अपने पुत्र चन्दन का बलिदान देकर राणासांगा के पुत्र उदयसिंह के जीवन की रक्षा की। उसी वीर उदयसिंह के पुत्र महाराणा प्रताप का कुम्भल गढ़ किले में ९ मई, १५४० को जन्म हुआ। पिता राणा उदयसिंह की स्वाधीन छत्रछाया, त्यागी पन्ना धाय के संरक्षण और महारानी जैवन्ताबाई के कुशल मार्गदर्शन और सदाचारी, नैतिकता और राष्ट्रभक्ति की शिक्षा की स्नेहांक में, रावलजी के युद्धकौशल के प्रशिक्षण में महाराणा प्रताप के जीवन का निर्माण हुआ। यही महाराणा प्रताप हमारे भारत के परवर्ती काल के क्रान्तिकारियों और राष्ट्रभक्तों के प्रेरणा स्रोत बने। महाराणा प्रताप ने संकल्प लिया था – ''जब तक मैं शत्रुओं से अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र नहीं करा लेता, तब तक मैं न तो महलों में रहूँगा, न ही सोने चाँदी के बर्तनों में भोजन करूँगा। घास ही मेरा बिछौना तथा पत्तल-दोनें ही मेरे भोजन-पात्र होंगे।'' ऐसे राष्ट्रनिष्ठ, प्रजापालक, योद्धा प्रताप ने जीवनभर मुगल अकबर और उनके सैनिकों को धूल चटाई और अन्त में मेवाड़ को पूर्णत: स्वतन्त्र कर १९ जनवरी, १५९७ को चावण्ड में देह-त्याग किया।

हल्दीघाटी का ऐतिहासिक युद्ध महाराणा प्रताप ने अकबर की तुलना में कम सैन्यशक्ति से लड़ा, लेकिन अपने रणकौशल और वीर योद्धाओं के कारण विजयी हुए।

उसके बाद अकबर ने उनके जीवन में कभी उधर कदम नहीं बढ़ाया। महाराणा प्रताप का स्वामीभक्त घोड़ा चेतक, जिसकी स्वामीभक्ति की गाथा आज भी चारण और गायक बड़े उत्साह और वीर शैली में गाते हैं –

रण बीच चौकड़ी भर-भरकर चेतन बन गया निराला था।
राणा प्रताप के घोड़े से पड़ गया हवा का पाला था।।
जो तनिक हवा से बाग हिली लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नहीं तब तक चेतक मुड़ जाता था ।।

राणाप्रताप के विजय में चेतक का बड़ा योगदान रहा। हल्दीघाटी के युद्ध में हाथी की सूड़ में बँधी तलवार से चेतक का पैर कट गया। किन्तु स्वामीभक्त घायल चेतक कई किलोमीटर तक प्रताप को लेकर आया और बीस फिट चौड़े बरसाती नाले को पार करने के बाद प्राण त्याग दिया। वहीं शिव मन्दिर के पास उसका दाह-संस्कार किया गया। आज वहीं उसका स्मारक भी बना हुआ है। उदयपुर में नवनिर्मित 'प्रताप गौरव केन्द्र' राणा प्रताप की गाथा का सर्वश्रेष्ठ स्मारक है।

राजस्थान के कुछ वीरों और वीरांगनाओं की कुछ घटनाएँ उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने राष्ट्रहित में विषम परिस्थितियों में संघर्ष कर अपना जीवन समर्पित किया।

कोशीथल की महारानी के पति अपने छोटे पुत्र को छोड़कर युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए। प्रताप ने मुगलों के विरुद्ध संग्राम में मेवाड़ के छोटे-बड़े सभी राज्यों, रियासतों को युद्ध में आने का निमन्त्रण दिया। पुत्र छोटा था, दूसरा कोई नहीं था, इसलिये कोशीथल की महारानी स्वयं योद्धा बनकर रणभूमि में युद्ध की और विजयी हुईं। जब राणा प्रताप के सिपाहियों ने उन्हें घायल हो गिरा देखा, तो उनकी सेवा-शुश्रूषा की और राणा प्रताप को इस घटना से अवगत कराया। राणा प्रताप ने उनके शौर्य और साहस से प्रसन्न होकर उन्हें कलगी प्रदान की, जो 'हुंकार की कलगी' से प्रसिद्ध है। तभी से इसे कोशीथल के ठाकुर अपनी पगड़ी पर लगाकर दरबार में आते हैं।

हाड़ी रानी मेवाड़ की वीरांगना थी। ये सलूम्बर के चूड़ावत सरदार रतन सिंह की पत्नी थीं। महाराजा राजसिंह (१६५२-१६८०) ने औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध लड़ने के लिए मेवाड़ के सभी सरदारों को बुलाया। रतनसिंह सद्य: विवाह करके आये थे। वे युद्ध में जाने हेतु तत्पर हो गये। उन्होंने युद्ध में जाते समय अपनी पत्नी की कोई प्रिय वस्तु माँगी। हाड़ी रानी ने पति का मनोभाव समझ लिया। उन्होंने सोचा कि जब तक मेरे पति का मन मुझमें लगा रहेगा, वे ठीक से युद्ध नहीं कर सकेंगे। उसने तत्काल तलवार से अपना सिर काटकर दासी को दे दी। दासी के सिर देते ही, रतनसिंह ने मुण्डमाल बनाकर गले में पहन लिया और औरंगजेब से युद्ध करते-करते बलिदान हुए।

महारानी पद्मिनी का भाई गोरा और बादल भतीजा था। गोरा-बादल बड़े शूर-वीर थे। अलाउद्दीन खिलजी ने छल से महारानी पद्मिनी के पति रतनसिंह को बन्दी बना लिया। उसने रतनसिंह को छोड़ने के लिये पद्मिनी की माँग की। गोरा और बादल को यह जानकारी हुई, तो उन दोनों ने एक योजना बनाई। बादल पद्मिनी बना और सेविका के रूप में सात-आठ सौ डोलियाँ, जिसमें वीर सैनिक और युद्ध सामग्री थी। गोरा-बादल ने सैनिक डोलियों के साथ खिलजी के शिविर में जाकर रतनसिंह को छुड़ाकर उन्हें सुरक्षित महल भेज दिया और वे सभी लड़ते-लड़ते वहाँ बलिदान हो गए। बाद में पद्मिनी ने सोलह हजार क्षत्राणियों के साथ जौहर किया।

आज भी देश में स्वतन्त्रता की आगी जल रही है। महाराणा प्रताप और वीर शहीदों की समाधियाँ हमसे पूछ रही हैं कि जिस राष्ट्र के गौरव एवं देशवासियों की रक्षा हेतु हमने अपना सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर किया, क्या तुम उसकी पूर्णत: रक्षा कर सके? क्या तुमने संस्कृति की रक्षा के लिए कोई कदम आगे बढ़ाया? क्या तुमने विदेशी वैचारिक दासता से मुक्ति प्राप्त की? क्या तुमने अपने प्रजा के हित में अपना स्वार्थ, सुख और अहंकार छोड़ा? क्या देश के गौरव, देश की अस्मिता माता-बहनों की आन-स्वाभिमान की रक्षा के लिए जनता का विश्वास जीत सके? क्या तुमने आर्थिक घोटाले, निर्दोष जनता पर अत्याचार और अनाचार को रोका? क्या सभी नागरिकों को भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा दे सके? यदि तुम कर सके, तो यह हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी, यही मेरी समाधि पर जलती अग्नि शिखा में सच्चा हवन होगा, तभी तुम हमारी सच्ची सन्तान और योग्य वंशज कहलाने के अधिकारी होगे, तभी तुम स्वतन्त्रता के सच्चे पुजारी होगे। OOO

स्वतन्त्रता के लिए जो हँसते हँसते बलिदान हुए

डॉ. श्रीलाल

नेत्र विशेषज्ञ और प्रधान सम्पादक, 'गीता स्वाध्याय' राजस्थान

मित्रो! आज हम जिस स्वतन्त्र गौरवशाली भारत में उन्मुक्त विचरते हुए शान्ति की साँस ले रहे हैं, उसे स्वाधीन करानेवाले वीरों और वीरांगनाओं को हम प्रणाम करते हैं और उनमें से कुछ के संघर्षमय जीवन की कुछ झलकियाँ प्रस्तुत करते हैं।

१८५७ के शौर्य की साक्षात् प्रतिमा : महारानी लक्ष्मी बाई

रानी लक्ष्मीबाई

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म १९ नवम्बर, १८३५ को काशी में हुआ। इनका बचपन का नाम मनु था। इनके पिता मोरोपंत ताम्बे पेशवा बाजीराव के मंत्री थे। बचपन से ही साहस, निडरता आदि वीरोचित प्रशासकीय गुण मनु के चेहरे पर झलकते थे, अत: पिता स्नेह से मनु को छबीली कहते थे। बचपन में ही मनु ने घुड़सवारी, तीरंदाजी, तलवार व बंदूक संचालन में निपुणता प्राप्त कर ली थी। सन् १८४२ में सात वर्ष की आयु में मनु का विवाह झाँसी के महाराज गंगाधर राव से हो गया। मनु अब झाँसी की महारानी बन गई।

डलहौजी की कुटिलता - सन् १८५१ में महारानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, पर मात्र ३ माह की आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई। पुत्र वियोग में २१ नवम्बर, १८५३ को महाराज का निधन हो गया। लक्ष्मीबाई ने अपने एक सम्बन्धी के पुत्र दामोदर राव को गोद ले लिया। कुटिल अंग्रेज गवर्नर डलहौजी ने झाँसी को इस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य में मिलाने की चाल चली और रानी को दुर्ग से निकालने का आदेश दिया।

यज्ञोपवीत संस्कार बना १८५७ की क्रान्ति का गुप्त सम्मेलन - महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजो को देश से निकालने का निश्चय कर चुकी थीं। सन् १८५७ के आरम्भ में महारानी ने दामोदर राव के यज्ञोपवीत संस्कार का आयोजन किया। जिसमें नाना साहेब, पेशवा, अजीमुल्ला, तात्याटोपे जैसे श्रेष्ठ जन सम्मिलित हुए। यहाँ एक गुप्त बैठक में सभी स्थानों पर एक साथ ३१ मई को क्रान्ति का बिगुल बजाने का निर्णय लिया गया।

झाँसी के दुर्ग पर स्वराज्य का ध्वज तथा ग्वालियर पर अधिकार – ४ जून, १८५७ को झाँसी में तैनात अंग्रेजों की १२वीं पलटन के भारतीय सैनिकों ने महारानी लक्ष्मीबाई का संकेत पाकर झाँसी दुर्ग पर अधिकार कर लिया और ७ जून को दुर्ग पर स्वराज्य का ध्वज आरोहित कर महारानी लक्ष्मीबाई को सिंहासनारूढ़ कर दिया। २३ मार्च, १८५८ को कर्नल ह्यूज ने विशाल सेना के साथ झाँसी को घेर लिया। झाँसी के सैनिकों ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। लगातार १२ दिनों तक महारानी के नेतृत्व में अत्यन्त प्रभावी प्रतिरोध के चलते अंग्रेजों की हिम्मत पस्त हो गई। एक विश्वासघाती के कारण अंग्रेज सेना अन्ततः दुर्ग में घुसने में सफल हो गई। अपने सहयोगियों के परामर्श पर महारानी की सहयोगी झलकारी ने महारानी का बाना धारण कर अंग्रेजों को संघर्ष में व्यस्त रखा और दूसरी ओर महारानी लक्ष्मी बाई शत्रुओं का सफाया करती हुई कालपी की ओर निकल पड़ीं। रात में १०२ मील की लम्बी यात्रा कर रानी कालपी पहुँचीं, जहाँ राव साहब एवं तात्या टोपे पहले ही तैयार थे। तीनों ने संयुक्त रूप से अंग्रेजों से संघर्ष किया। यहाँ से महारानी अपने सहयोगियों के साथ ग्वालियर की ओर कूच कर गईं और ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों का मित्र राजा जियाजीराव सिंधिया ग्वालियर छोड़कर भाग गया और उसके कोषाध्यक्ष बीकानेर के अमरचंद बाँठिया ने राजकोष महारानी को समर्पित कर दिया। अंग्रेज सेनापति स्मिथ सेना लेकर ग्वालियर की ओर बढ़ा, परन्तु १६ जून को महारानी ने स्मिथ को भागने पर विवश कर दिया।

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी – १८ जून, १८५८ को अंग्रजों ने सूर्योदय से पूर्व ही युद्ध का

बिगुल बजा दिया। महिला तोपची जूही एवं पराक्रमी मुन्दर के साथ महारानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रजों से युद्ध आरम्भ किया। रानी रणचण्डी बन अंग्रेजों की लाशें बिछा रही थीं। जूही को युद्ध में वीरगति प्राप्त हुई। महारानी ने स्वयं तोपखाने को संभाला। महारानी घोड़े की लगाम को दाँतों में दबाकर दोनों हाथों से तलवार चला कर युद्ध कर रही थीं। रानी को अंग्रजों ने घेर लिया। रानी के रक्षा दल की नायिका मुन्दर ने रानी को बचाते हुए वीरगति प्राप्त की। रानी ने स्वर्ण रेखा नाले को पार करने के लिए घोड़े को एड़ लगाई, तभी एक अंग्रेज सैनिक ने पीछे से उनके मस्तक पर वार किया। महारानी के मस्तक का दायाँ भाग कट गया तथा दायीं आँख बाहर निकल आई, फिर भी रानी ने उस अंग्रेज को समाप्त कर दिया। तभी रानी के सहयोगी वहाँ पहुँचे। घायल रानी को घोड़े से उतारकर बाबा गंगादास की कुटिया पर ले जाया गया। जहाँ गम्भीर चोट के कारण १८ जून, १८५८ को महारानी को वीरगति प्राप्त हुई। इसी स्थल पर महारानी का अंतिम संस्कार कर दिया गया, ताकि अंग्रेज उनकी पवित्र देह को स्पर्श न कर सकें।

१८५७ के प्रथम हुतात्मा – मंगल पांडे

१९ जुलाई, १८२७ को उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के ग्राम नागवा में मंगल पांडे का जन्म हुआ। बचपन से सैन्य शिक्षा में रुचि होने से मंगल पांडे ने अंग्रेज सेना में नौकरी कर ली। वर्ष १८५७ में सम्पूर्ण देश में अंग्रेजों के विरुद्ध ज्वार उठा। पूरे देश की जनता अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराना चाहती थी। अंग्रेज सेना के भारतीय सैनिकों में भी देशाभिमान के कारण देश को अंग्रेजों से मुक्त कराने की भावना प्रबल होती जा रही थी।

मंगल पांडे

स्थान-स्थान पर भारतीय सैनिक अंग्रेजों का प्रतिकार करने की गुप्त योजना बना रहे थे। उसी समय अंग्रेजों ने गाय की चर्बी लगे कारतूस का बंदूकों में उपयोग करने के आदेश दिये। इस आदेश से भारतीय सैनिकों में अंग्रेजों के प्रति क्रोध का ज्वालामुखी फूट पड़ा।

मेरठ की सैन्य छावनी में नियुक्त मंगल पांडे ने सर्वप्रथम गाय की चर्बी लगे कारतूस लेने से मना किया। परिणामस्वरूप उनके शस्त्र छीनने एवं गणवेश उतारने का सैन्य आदेश हुआ। मंगल पांडे ने निडरतापूर्वक इस आदेश को मानने से इंकार कर दिया। २९ मार्च, १८५७ को अंग्रेज सेनाधिकारी ह्यूसन मंगल पांडे से शस्त्र छीनने आया, तो मंगल पांडे ने अदम्य साहस का परिचय देते हुए उस पर गोली चला दी। गोली लगते ही ह्यूसन मारा गया।

अंग्रेज सैन्य अधिकारी के मारे जाने से अंग्रेजी सेना में कोहराम मच गया। अंग्रेज सैनिकों ने मंगल पांडे को बंदी बनाने का प्रयत्न किया। मंगल पांडे बहुत ही कठिनाई से अंग्रेजों के हाथ लगे। उन पर सैन्य न्यायालय में राजद्रोह का अभियोग चलाकर न्याय की औपचारिकता पूर्ण की गई। न्यायाधीश ने ६ अप्रैल, १८५७ को मंगल पांडे को मृत्युदण्ड से दण्डित किया और १८ अप्रैल, १८५७ को फाँसी पर लटकाना निश्चित किया। अंग्रेजों को आशंका थी कि इस निर्णय की प्रतिक्रिया कहीं अंग्रेजों के विरुद्ध विकराल रूप धारण कर ज्वाला नहीं बन जाए, इस भय से अंग्रेजों ने निश्चित दिनांक से दस दिन पूर्व ८ अप्रैल, १८५७ को ही चुपचाप इस निडर राष्ट्रभक्त योद्धा को फाँसी पर लटका दिया।

महावीर मंगल पांडे द्वारा लगायी गई यह चिनगारी बुझी नहीं, अपितु १० मई, १८५७ को मेरठ छावनी में भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के प्रति विद्रोह कर दिया और देखते ही देखते यह चिंगारी ज्वाला बनकर अंग्रजों के विरुद्ध प्रथम स्वातंत्र्य समर का रूप लेकर सम्पूर्ण भारत में फैल गई।

महान क्रान्तिकारी – लाला हरदयाल

असाधारण बुद्धि के धनी लाला हरदयाल का जन्म १४ अक्टूबर, १८८४ को दिल्ली में श्री गौरीशंकर माथुर के घर हुआ। दिल्ली के एक महाविद्यालय से बी.ए. करने के बाद वे उच्च शिक्षा हेतु लाहौर गये, जहाँ उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। दो वर्ष के पाठ्यक्रम को एक ही वर्ष में पूरा कर उन्होंने परीक्षा में ९७% अंक प्राप्त किये।

अद्वितीय कुशाग्र बुद्धि – २० वर्ष की आयु में लाहौर महाविद्यालय में (अब पाकिस्तान में) सहपाठियों के साथ एक दिन शतरंज खेल रहे थे। उन्होंने सिर्फ पाँच मिनट में

अपने सहपाठी को मात दे दी। इतना ही नहीं, उसी समय एक साथी घंटी की टन-टन आवाज कर रहा था, एक व्यक्ति अरबी भाषा में कविता सुना रहा था, बाद में एक अध्यापक ने लेटिन भाषा में कविता सुनाई और इसी पाँच मिनट में उन्हें गणित का एक प्रश्न हल करने हेतु दिया गया था। विलक्षण प्रतिभा के धनी युवक हरदयाल ने शतरंज में बाजी जीता, कितनी बार टन-टन की आवाज आई उसे गिना, अरबी और लेटिन की कविता दोहराई तथा गणित का प्रश्न हल किया। इतना सब केवल पाँच मिनट में।

लन्दन प्रवास – विद्यार्थी हरदयाल की असाधारण प्रतिभा से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें एक साथ तीन छात्रवृत्तियाँ दी थी तथा अध्ययन हेतु लन्दन भेजा। लन्दन में उनकी भेंट क्रान्तिकारियों के पितामह श्यामजी कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द तथा वीर सावरकर से हुई। उस समय लन्दन में क्रान्तिकारियों के केन्द्र 'इंडिया हाऊस' में उनका आना-जाना आरम्भ हो गया। लाला हरदयाल की प्रतिभा को श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा वीर सावरकर ने पहचान लिया तथा उन्हें देशभक्त के रूप में तराशना आरम्भ कर दिया।

मातृभूमि हेतु प्रतिभा का समर्पण – लालाजी के मन में अंग्रेज तथा अंग्रेजियत के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होंने आई.सी.एस. की प्रतिष्ठित परीक्षा में बैठने का विचार त्यागकर अपनी प्रतिभा को मातृभूमि के चरणों में समर्पित करने का निश्चय कर लिया। लाहौर में एक आश्रम खोलकर तरुणों को उसमें भर्ती करने लगे। अंग्रेजों ने उनकी गतिविधियों पर सन्देह करते हुए उनके चारों ओर गुप्तचरों का जाल बिछा दिया।

अंग्रेज सरकार को चकमा – अंग्रेजी पुलिस तथा गुप्तचरों को चकमा देते हुए लालाजी कोलम्बो पहुँच गये। वहाँ से इटली होते हुए फ्रांस की राजधानी पेरिस पहुँचे, जहाँ पहले से ही वीर सावरकर, मैडम कामा तथा श्यामजी कृष्ण वर्मा भारत को स्वाधीन कराने की योजनाओं में कार्यरत थे। लालाजी को मैडम कामा के क्रान्तिकारी अखबार 'वन्देमातरम्' के सम्पादन का दायित्व दिया गया। फ्रांस सरकार पर उन्हें बन्दी बनाने का दबाव बढ़ता देख लालाजी लन्दन, अल्जीयर्स होते हुए वेस्टइंडीज के एक द्वीप में पहुँच गये। वहाँ कुछ समय साधना में रत रहे, किन्तु भाई परमानन्द ने उन्हें उस द्वीप में जाकर खोज निकला।

अमेरिका की भूमि से आन्दोलन – वेस्टइंडीज के द्वीप में भाई परमानन्द के साथ मिलकर अमेरिका से आन्दोलन चलाने की योजना के अनुसार दोनों क्रान्तिकारी सेनफ्रांसिस्को (अमेरिका) पहुँचे। वहाँ लालाजी के भाषणों का ऐसा प्रभाव हुआ कि लालाजी को स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा हिन्दू दर्शन का प्रोफेसर नियुक्त कर दिया गया। भारत की स्वाधीनता के लिए अमेरिका में बनी गदर पार्टी के लालाजी मंत्री बनाये गये। अमेरिका में गिरफ्तारी का खतरा देख लालाजी ने जर्मनी को अपनी कर्मभूमि बनाया। देश में एक साथ क्रान्ति की योजना के अन्तर्गत लालाजी ने जर्मनी से शस्त्रों से भरे जहाज भारत भेजे, किन्तु वे अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिये गये।

लाला हरदयाल

अमेरिकी भूमि से भारत माता को अन्तिम प्रणाम – जर्मनी से संचालित आन्दोलन को दुर्बल होते देख लाला जी स्वीडन चले गये। वहाँ उन्होंने विज्ञान तथा दर्शनशास्त्र में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। क्रान्ति के लिये अनुकूल समय देख लालाजी फिर अमेरिका गये। वहाँ से भारत आने की तैयारी कर रहे थे कि ४ मार्च, १९३९ को फिलेडेल्फिया में उनका रहस्यमयी परिस्थितियों में देहान्त हो गया।

क्रान्तिकारियों के मुकुटमणि – रामप्रसाद बिस्मिल

पं. रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म २८ जून, १८९७ को उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर में श्री मुरलीधर के यहाँ हुआ था। १४ वर्ष की आयु में उर्दू में चौथी कक्षा उत्तीर्ण की। इन्हें पुस्तकें पढ़ने में बहुत रुचि थी। पिता द्वारा धन नहीं दिये जाने पर इन्होंने घर में चोरी करना सीख लिया। कुसंगति से रामप्रसाद को बीड़ी पीने की आदत हो गई। पाँचवी कक्षा में दो बार अनुत्तीर्ण हो गये।

स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं का प्रभाव – पास ही एक मंदिर में नये पुजारी आये थे। वे रामप्रसाद को बहुत चाहते थे। उनके सत्संग और स्नेह के कारण धीरे-धीरे रामप्रसाद ने बुरी आदतों को त्याग दिया। मुंशी इन्द्रजीत नामक एक सज्जन ने उन्हें सन्ध्या वन्दन सिखाया तथा आर्यसमाज के विषय में बताया। रामप्रसाद स्वामी दयानन्द के 'सत्यार्थ प्रकाश' को पढ़कर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वयं को एक वीर के रूप में ऊँचा उठाने का संकल्प कर

लिया। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, नियमित व्यायाम, सन्ध्या वन्दन, सात्त्विक एवं मितभोजी होने के प्रभाव से इनका शरीर सुन्दर तथा वज्र के समान बलिष्ठ हो गया।

श्रेष्ठ महापुरुषों से सम्पर्क – आर्य समाज के श्रेष्ठ देशभक्त संन्यासी पं. सोमदेवजी के प्रवचनों तथा सम्पर्क से प्रेरित रामप्रसाद ने धर्म, राजनीति, योग आदि का अध्ययन किया। देवतास्वरूप भाई परमानन्द की पुस्तक 'तवारीखे हिन्द' से उन्हें प्रेरणा मिली। सन् १९१६ में 'लाहौर षड्यन्त्र प्रकरण' में भाई परमानन्द को मृत्यु दण्ड का समाचार सुन रामप्रसाद का रक्त खौल उठा। उन्होंने गुरु सोमदेवजी के सान्निध्य में प्रतिज्ञा की कि वे ब्रिटिश सरकार से इस अन्याय का प्रतिशोध लेंगे। कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के लिए लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को अध्यक्ष चुना गया था। तिलक ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में 'पूर्ण स्वराज्य' की घोषणा की थी। कांग्रेस के नरमपंथी इससे सहमत नहीं थे, अत: लखनऊ में तिलक के स्वागत की तैयारी नहीं की गई। एम.ए. के छात्र पं. रामप्रसाद बिस्मिल चुपचाप ले जाये जा रहे तिलक की गाड़ी के आगे लेट गये तथा गाड़ी रुकने पर अपने युवा साथियों के साथ लखनऊ के मुख्य मार्गों पर बग्गी में बिठाकर, जिसे युवकों ने ही खींचा था, लोकमान्य तिलक का अद्वितीय जुलूस निकाला।

राम प्रसाद बिस्मिल

काकोरी काण्ड – लखनऊ के निकट एक छोटा-सा गाँव काकोरी में ९ अगस्त, १९२५ को रेलगाड़ी में जा रहे राजकोष पर क्रान्तिकारियों द्वारा आक्रमण के कारण यह गाँव प्रसिद्ध हो गया। उन दिनों देश में स्वाधीनता का आन्दोलन चल रहा था। शस्त्र खरीदने हेतु धन के लिए क्रान्तिकारी ग्रामों में डाके डालने लगे। किन्तु शीघ्र ही उनके मन में विचार आया कि अपने देशवासियों को लूट-मारकर आन्दोलन चलाने से क्या लाभ है? अत: उन्होंने सरकारी कोष लूटने की योजना बनाई। काकोरी में जंजीर खींचकर रेल रोकी गई। क्रांतिकारियों के मुकुटमणि, पं. रामप्रसाद बिस्मिल ने इसका नेतृत्व किया। बाद में ये लोग अंग्रेजों द्वारा पकड़े गये और क्रान्तिकारियों पर अभियोग चलाया गया। पं. रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक़ उल्ला खाँ, रोशनसिंह तथा राजेन्द्र लाहिड़ी को मृत्यु दण्ड सुनाया गया।

क्रान्तिकारी जीवन – पं. रामप्रसाद बिस्मिल क्रान्तिकारी पुस्तकें लिखकर बेचने लगे तथा उस धन को क्रान्तिकारियों के लिये शस्त्र आदि खरीदने हेतु देते थे। अंग्रेजों ने उनकी पुस्तक 'अमेरीका ने आजादी कैसे पाई' पर प्रतिबन्ध लगा दिया। प्रतिबन्धित पुस्तकें और अधिक बिकने लगीं। धीरे-धीरे पं. रामप्रसाद स्वयं क्रान्तिकारी गतिविधियों से जुड़ गये। जीवन के उतार-चढ़ावों के उपरान्त पं. रामप्रसाद का स्वाध्याय तथा लेखन कार्य चलता रहा। उन्होंने 'बोल्शेविक क्रान्ति', 'मन की तरंग', 'कैथोरीन', 'स्वदेशी रंग' और अपनी 'आत्मकथा' आदि पुस्तकें लिखी। वज्र के समान शरीर, अदम्य वीरता का भाव, धर्म और राजनीति की समझ, लेखन प्रतिभा जैसे श्रेष्ठ संस्कार युक्त युवक रामप्रसाद के जीवन पर 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा 'आर्य समाज' का विशेष प्रभाव था। 'वंदेमातरम्' उद्घोष के साथ १९२७ को अमर क्रांतिकारी पं. रामप्रसाद बिस्मिल फाँसी के फन्दे पर झूल गये।

अजेय क्रान्तिकारी – चन्द्रशेखर आजाद

महान क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद का उल्लेख किये बिना भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की चर्चा अधूरी है। मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के भाबारा ग्राम में जन्मे चन्द्रशेखर के पिता का नाम पं. सीताराम तिवारी था। उस समय देश में अंग्रेजों का राज्य था और अंग्रेज भारतीय जनता पर भारी अत्याचार कर रहे थे। क्रान्ति की भावना से प्रभावित बालक चन्द्रशेखर ने एक दिन उद्यान में से फल चुराकर बेचे तथा उससे प्राप्त पैसों से बारूद खरीदा। पिता ने चोरी करने के कारण इन्हें पीटा। चन्द्रशेखर घर छोड़ कर चले गये। माँ ने इन्हें अपनी बचत राशि में से ११ रुपये दिये थे। चन्द्रशेखर यह राशि लेकर अध्ययन हेतु काशी चले गये। वहाँ वे काशी विद्यापीठ में संस्कृत अध्ययन करने लगे तथा 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' एवं 'अमरकोष' का ज्ञान प्राप्त किया।

१९२१ में चन्द्रशेखर १६ वर्ष के थे। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में पूरे देश में असहयोग आन्दोलन चल रहा था। एक स्थान पर सत्याग्रही विदेशी वस्त्रों की दुकान पर धरना दे रहे थे। पुलिस के द्वारा उन पर किये जा रहे क्रूर अत्याचार को दूर खड़े चन्द्रशेखर सहन नहीं कर सके। उन्होंने एक बड़ा पत्थर लेकर पुलिस के दरोगा के सिर पर दे मारा। सिर पर चन्दन का टीका होने से चन्द्रशेखर भीड़ में पकड़े गये। उन्हें रातभर बहुत से अन्य कैदियों के साथ कड़ाके की ठंड में रखा गया। वे रात्रि में ठंड को भगाने हेतु जेल में दंड-बैठक लगाने लगे। दूसरे दिन प्रात: उन्हें दंडाधिकारी के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। दंडाधिकारी ने पूछा – तुम्हारा नाम क्या है? चन्द्रशेखर ने कहा – 'आजाद'। पिता का क्या नाम है? – 'स्वाधीनता'। घर कहाँ है? – 'जेल में'। यह सुनकर क्रूर दंडाधिकारी क्रुद्ध हो गया। उसने चन्द्रशेखर को १५ बैंतों का दंड दिया। तरुण चन्द्रशेखर क्रूरतापूर्वक मारी गई १५ बैंतों को सहन करते हुए 'महात्मा गाँधी की जय' बोलते रहे। चन्द्रशेखर का नाम तब से 'आजाद' पड़ गया।

चन्द्रशेखर आजाद

काकोरी स्टेशन पर राजकीय कोष को लूटने के लिए पं. रामप्रसाद बिस्मिल, मन्मथनाथ गुप्त, चन्द्रशेखर आजाद, मुंशीलाल, मुकन्दीलाल, बनवारीलाल, केशव चक्रवर्ती, अशफ़ाक़ उल्ला ख़ाँ, राजेन्द्र लाहिड़ी, शचीन्द्रनाथ, ठाकुर रोशन सिंह आदि शाहजहाँपुर से रेल के विभिन्न डिब्बों में सवार हो गये। काकोरी स्टेशन के पास जंजीर खींच कर रेल रोककर खजाना लूट लिया। गार्ड और चालक आजाद के डर से औंधे मुँह घास में जाकर पड़ गये। काफी समय बाद पं. रामप्रसाद बिस्मिल आदि सभी क्रान्तिकारियों को पकड़ने में पुलिस सफल रही, किन्तु चन्द्रशेखर आजाद अन्त तक पकड़ में नहीं आये।

साण्डर्स वध – सन् १९२८ में साइमन कमीशन भारत आया। कांग्रेस के नेतृत्व में पूरे देश में इसका विरोध हुआ। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय को बुरी तरह पीटा, जो अन्तत: उनकी मृत्यु का कारण बना। क्रान्तिकारियों ने लालाजी की मृत्यु के जिम्मेदार साण्डर्स को दंड देने हेतु दिसम्बर १९२८ में दिन दहाड़े उसका वध कर दिया। आजाद के नेतृत्व में हुई इस हत्या पर अंग्रेज चौकन्ने हो गये। अन्तत: भगत सिंह, राजगुरु, बटुकेश्वर दत्त गिरफ्तार कर लिये गये, किन्तु आजाद फिर भी पकड़ में नहीं आये।

अजेय क्रान्तिकारी – ८ अप्रैल, १९२९ के केन्द्रीय असेम्बली बम विस्फोट में भी आजाद ही मुख्य नायक थे। आजाद पुलिस से बचने के लिये विभिन्न वेश बदलकर क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाते रहे, किन्तु पुलिस की पकड़ में नहीं आये।

अन्त में २७ फरवरी, १९३१ ई. को वे इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क (वर्तमान में आजाद पार्क) में पुलिस द्वारा घेर लिये गए। इस कार्य में अवश्य ही किसी मुखबिर का हाथ रहा होगा, भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् भी उनके साथी यह आरोप एक-दूसरे पर लगाते रहे। चारों ओर से उन पर गोलियों की बौछार होने लगी। उन्होंने भी अपनी पिस्तौल निकाल ली।

कहते हैं कि उनके पास कुछ महत्त्वपूर्ण कागजात थे, वे एक हाथ से पिस्तौल चलाते तथा दूसरे से उन कागजों को निकालकर मुँह में डालकर निगलते जाते थे। वे घायल तो हो ही चुके थे, किन्तु जब उनकी पिस्तौल में एक ही गोली बची, तो उन्होंने स्वयं पर चला दी, क्योंकि वे अँग्रेजों की जेल में रहना नहीं चाहते थे। वे आजाद थे और मृत्यु तक आजाद ही रहे। पुलिस उनके पास आने से इतनी घबराती थी कि मरने के बाद भी पुलिस उन पर गोलियाँ दागती रही। आजाद ने पुलिस से संघर्ष किया तथा अन्त में गोलियाँ समाप्त होने पर अन्तिम गोली अपने सीने में दाग कर भारतमाता की गोदी में चिरनिद्रा में सो गये। आजाद गुनगुनाया करते थे –

दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे।
आजाद हम हैं, आजाद ही रहेंगे।। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३२)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

१४ दिसम्बर, १८९९ : शिकागो (मिस मैक्लाउड को)

आज सुबह त्यागानन्द नाम का बालक मुझसे मिलने आया। उसका कहना है कि वह स्वामीजी के बाह्य जीवन के विषय में कुछ भी याद नहीं कर पा रहा है, क्योंकि उनके पास रहते समय, उसे सर्वदा उनकी दिव्य सत्ता का बोध बना रहता था।

१५ दिसम्बर, १८९९ : स्वामी विवेकानन्द को

श्रीमती बेल का आवास

शिकागो, शुक्रवार

मेरे प्रिय पिता,

आज सारे दिन मैं आपको पत्र लिखने के संकल्प के साथ आनन्दमग्न हूँ। पिछली रात मैं इतनी थकी थी कि एक शब्द भी नहीं लिख सकी।

बुआ मेरी[1] ने कल मुझे समूल रूप से उखाड़कर कुछ दिनों के लिये यहाँ सुख-सुविधा के बीच रोप दिया है। यहाँ आने के बाद शीघ्र ही मैं समझ गयी कि पिछले कुछ सप्ताहों के दौरान मैंने कितनी गम्भीरता के बीच निवास किया है; और हँसना कितनी उपयोगी चीज है! आप जानते ही हैं कि मिस हैरियट मैक्किंडली यहीं उपस्थित है!

इसके बाद मेरी बुआ निशाभोज में उपस्थित रहीं और सन्ध्या यहीं व्यतीत कीं, बड़ा अच्छा लगा। आज उनका जन्मदिन है।

सोमवार की शाम। अपने निर्धन वृद्ध पिता (स्वामीजी) के लिये, क्या मैं आपकी एक अयोग्य पुत्री नहीं रही? परन्तु सुनती हूँ कि अब वे निर्धन नहीं और वृद्ध भी नहीं रहे; अब वे वस्तुत: खूब तरुण और क्रीड़ाशील होते जा रहे हैं! अत: प्रिय पिता, हम सर्वदा किसी-न-किसी प्राचीन कहावत का पलटकर उपयोग करते हैं। स्पष्टत: वर्तमान में जब चूहा बाहर गया होता है, तब बिल्ली खेलेगी!

अहा, स्वामीजी! स्वामीजी! स्वामीजी! यदि यह बात सत्य हो, यदि माँ आपको आपका स्वास्थ्य लौटा दें, यदि आप अपने शरीर में स्वयं को एक बार फिर सबल अनुभव कर सकें, आप अपने आकांक्षित भार को वहन करने में समर्थ हो जायँ, तो फिर जीवन में माँगने योग्य मेरे लिये कुछ भी नहीं रह जाएगा। केवल (यही आशंका है कि) माँ आपको पुन: कहीं उस पुरानी खाई में न डाल दें। परन्तु मैं पूरी तौर से आशान्वित हूँ कि वे ऐसा कदापि नहीं करेंगी!

यहाँ मुझे अगले शनिवार तक रहना है। वैसे भी, उसी दिन यहाँ एकत्र पारिवारिक जमावड़ा टूटने वाला है; और तब मैं भी अपने निवास पर लौट सकूँगी। यह समय मेरे लिये बड़ा ही मनभावन रहा है। यह इसलिये भी कि इसने मुझे मेरी तथा अन्य लोगों के साथ विशेष रूप से परिचित होने का अवसर दिया है। मुझे लगता है कि अन्य तीन बहनों की अपेक्षा इसाबेल मेरे प्रति सर्वाधिक सहानुभूतिशील हैं, इसकी मुझे जरा भी आशा न थी।

एक दिन कुछ महिलाएँ – मठ-जीवन से सम्बन्धित कुछ लेकर मुझसे मिलने आयीं। उनमें से एक ने कहा, "मैं कभी कैथॅलिक नहीं होना चाहती थी, तथापि मैं सारे जीवन किसी कानवेंट (मठ) में जाने के लिये आकुल रही! परन्तु मैंने कभी अपने इस भाव को व्यक्त करने की बात नहीं सोची। परिस्थितियों के अनुसार मैंने विवाह किया और अब मैं दो बच्चों वाली एक विधवा हूँ। उस दिन – रात के समय, आपने भारत की बाल-विधवाओं के विषय में कुछ कहा था, उसी के द्वारा सारी बातें और 'अपने प्रति मेरे असन्तोष का भाव' भी स्पष्ट हो गया!"

दूसरी महिला – अब तक अविवाहित है। उसने कहा, "ओह, मैं त्याग-वैराग्य के विषय में जानना चाहती हूँ! मुझे कुछ और भी कहिये।" मैंने उन दोनों को बताया कि किस प्रकार मैं आपसे मिलने के पूर्व तक किसी भी चीज में

१. मेरी हेल को – चूँकि स्वामीजी अपनी बहन मानते थे, अत: उनकी मानस-पुत्री निवेदिता उनका बुआ के रूप में सम्मान करती थीं।

'विश्वास' नहीं करती थी; किस प्रकार मैंने आपसे केवल एक – 'त्याग' शब्द को ही सुना था; और आज तक किस प्रकार मैंने उस शब्द के अतिरिक्त मानो अन्य कुछ भी नहीं सुना।

मुझे बोध हुआ कि हमने जिस मुहूर्त की अपेक्षा की थी, वह आ गया है, जो आत्माएँ उस शब्द (वैराग्य) के लिये प्रतीक्षा कर रही थीं, उन्होंने इस संकेत का प्रत्युत्तर दिया है। छोटी-सी श्रीमती यैरोस इसके विरोध में इतना किच-किच करती हैं कि इसकी यौक्तिकता सिद्ध करने के लिये मुझे इसकी गहराई में जाना पड़ता है। मैं उन्हें पसन्द करती हूँ और आपका सुन्दर पत्र इस शब्द पर एक स्थायी मुकुट है।

आपकी पुत्री,

मार्गट

अभयानन्द का पत्र क्या अद्‌भुत नहीं है? इसाबेल आपको 'एक प्रीति से परिपूर्ण हृदय'' भेज रही है।

६ मई, १९०० : शिकागो (मिस मैक्लाउड को)

मैं यहाँ आँखें खोलकर सरोवर की ओर और दृष्टि को नीचे झुकाकर वृक्षों के शिरो-भाग को देख रही हूँ। कई दिनों से मैं यहीं श्रीमती कूनली वार्ड के साथ ठहरी हूँ। मैं अकेली हूँ और एक विशाल खिड़की में बैठकर घण्टे भर से Pavlo (पाव्लो) तथा Francesca (फ्रांसेस्का) की पुस्तकें पढ़ रही हूँ। (सब कुछ) कितना मनोरम लग रहा है?

स्वामीजी जब हमें बताते हैं कि यह ब्रह्माण्ड और यहाँ तक की स्वयं परमात्मा तक, सभी – 'शब्दों के अर्थ' मात्र हैं, अब मैं अपने भीतर उनके उस mood (मनोभाव) को अनुभव कर रही हूँ। मैं जानती हूँ कि एक दिन मैं मुक्ति की अवस्था में पहुँच जाऊँगी और मेरा विश्वास है कि तब एक महा-आह्वान मेरी वाणी के लिये प्रतीक्षा कर रहा होगा; और मेरा हर शब्द या हर वाक्य मानव-जीवन को अनुप्राणित करेगा। तब मुझे कथा के चारों ओर – चित्रों की माला नहीं गूँथनी होगी, तब निश्चित रूप से प्रत्येक झलक के साथ जीवन-नाट्य बड़ी तेजी से बदलेगा और सुनिश्चित रूप से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होगा। इसके बाद, उसके भी परे, एक दिव्य शब्द-चित्र, अति प्राचीन ... तथापि भविष्य के लिये एक भावमूर्ति, जो अपने भीतर सभी नाट्यों को निश्चित रूप से समाहित किये होगा।

इसके बावजूद, देखो! मैं अब भी एक मूर्तिपूजक (प्रतीक-उपासिका) हूँ! मैं उस एक शब्द की खोज में हूँ, जो व्यक्ति के अनन्त अनिर्वचनीय भाव को अभिव्यक्त कर सके!

मैं दृष्टि उठाकर अपनी खिड़की के मात्र कुछ कदम नीचे फैली विशाल नील जलराशि में उठनेवाली अविराम तरंगों को देख पाती हूँ, जो बीच-बीच में वृक्षों की पत्रहीन शाखाओं के द्वारा बाधित हो रही हैं, कहीं-कहीं तीर के समान नुकीले अंकुरों के टकराने से जलराशि कम्पित हो रही है और इस नीले जल के ऊपर से उत्तर तथा दक्षिण की ओर उड़नेवाले श्वेत 'गल' पक्षियों को देखकर ऐसा लगता है, मानो वे वृक्षों की इन जुड़ी हुई पत्रहीन शाखाओं के बीच से होकर जा रहे हों।

सोच रही थी कि मैं तुमसे पूछूँ – अपनी मुक्ति के उस महादिवस पर तुम क्या पाना चाहोगी? मैं जानती हूँ कि तुम 'शब्द' नहीं चाहोगी, कोई क्रन्दन भी नहीं करोगी! यदि मैं कल्पना कर सकूँ कि तुम अपने लिये कुछ पाने की सोच सकती हो, तो कदाचित् तुम चाहोगी – सबसे प्रेम करने का अधिकार, या सबको उनकी पीड़ाओं से मुक्त करके उन्हें स्वयं ग्रहण करना या फिर तुम चाहोगी कोई दिव्य-दर्शन न पाने का अधिकार, मैं कल्पना करती हूँ कि तुम यही सब चाहोगी।

इस तरह का स्वप्न देखना स्वार्थपूर्ण है – है न? परन्तु शब्दों की इस शक्ति के भीतर कोई बड़ा रहस्यमय तत्त्व है, जो आत्मा को सामने की जलराशि या वृक्षों के समान आलोड़ित कर देता है...।[२] **(क्रमशः)**

२. निवेदिता ने यहाँ जिस 'शब्द'-तत्त्व की व्याख्या की है, वह स्वामीजी के विचारों से ही प्रेरित है। इस विषय की और सुबोध व्याख्याएँ उनके कई ग्रन्थों में मिलती हैं; यथा 'देववाणी' में – दिनांक १९ तथा ३० जून और १२ जुलाई, १८९५ ई. के प्रवचनों में।

गुरु के प्रति अकपट श्रद्धा-विश्वास यदि नहीं हुआ तो आध्यात्मिक जगत् में उन्नति कर सकना मुश्किल ही है। गुरुवाक्य में कभी भी अविश्वास या संशय नहीं करना, गुरुवाक्य को वेदवाक्य ही समझना, श्रीगुरु के उपदेश को बिना सोचे-समझे भी सर्वान्तःकरणपूर्वक पालन करने की चेष्टा करो, (यदि वस्तुलाभ चाहिए) समझ रखो कि गुरु के समान तुम्हारा इहलोक और परलोक दोनों का हिताकांक्षी और कोई नहीं। गुरूपदिष्ट मार्ग का निष्ठा के साथ साधन करना ही उनकी यथार्थ सेवा है। उसी से वे सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं।

– स्वामी विरजानन्द (रामकृष्ण संघ के ६ वें अध्यक्ष)

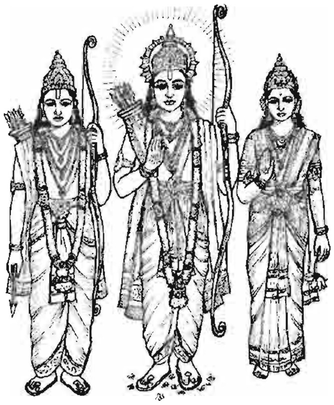

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

यह भगवान की परम कृपा है। कृपा को उस अर्थ में देखिए जब वे मनुष्य के रूप में अवतरित होते हैं और स्वयं साधना करके दिखाते हैं। इससे बढ़कर कृपा क्या होगी? उन्हें साधना की आवश्यकता न होते हुए भी वे अपने जीवन में साधना को स्वीकार करते हैं। भगवान ने साधना करके दिखाया और उस मार्ग में जो समस्याएँ आती हैं, उन समस्याओं का दिग्दर्शन कराया। देवता उतावले क्यों थे? बोले, बस, अब तो सब ठीक हो गया। रावण का अत्याचार है, भगवान आकर मार देंगे, हम चलकर अप्सराओं का नृत्य देखें। स्वर्ग में विहार करें। अब भगवान को जो करना है, करेंगे, हमें क्या करना है? कृपावृत्ति की ऐसी व्याख्या भोगी व्यक्ति करता है। संसार में जो भोगी व्यक्ति हैं, वे सभी भोगपरायण देवताओं जैसी कृपा की व्याख्या कर लेते हैं। लेकिन यह सही नहीं है। भगवान तपस्या का नाम ले रहे हैं। भगवान यह बता रहे हैं कि वे कृपा से आए कि तपस्या से आए? भगवान जब आयेंगे, तो अपनी कृपा से ही आयेंगे, किन्तु कृपा से आने के बाद भी भगवान को यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि **कस्यप अदिति महातप कीन्हा।**

इसका अभिप्राय यह है कि भोगी यह न मान ले कि तप का तो कोई महत्त्व ही नहीं है। भगवान यह घोषणा कर रहे हैं कि दशरथ और कौशल्या के रूप में जो जन्म लेंगे, वे बड़ी तपस्या कर चुके हैं।

देवताओं जैसा स्वार्थी और भोगी व्यक्ति यह समझता है कि साधना की आवश्यकता नहीं है, तप की आवश्यकता नहीं है, वह तप-साधना की निन्दा करता है। इसलिए ब्रह्मा ने कहा कि भगवान ने आधी रामायण पर विराम लगा दिया, अब आधी रामायण तो तुम लोगों को पूरी करनी है। क्या पूरी करनी है? बोले, भगवान जब ऊपर से नीचे उतर कर, ब्रह्म से नर बन रहे हैं, तो तुम कम से कम बानर तो बन जाओ।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि नर और वानर, अब दोनों मिलें। यद्यपि उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है, पर उन्हें आवश्यकता न होते हुए भी जब वे मनुष्य के रूप में अवतार लेते हैं, तो रावण का वध भी अकेले नहीं करते। वे स्वयं सारे बन्दरों को भी लेकर जाते हैं। यहाँ तक कि सीताजी का पता लगाने चले, पर अन्त में उन्होंने हनुमानजी का आश्रय लिया। ये सबके सब साधना के ही सूत्र हैं, जो भगवान ने बताया कि श्रीसीताजी का पता लगाना हो, तो किसके पास जाएँ, कैसे पता लगाएँ। हनुमानजी ही पता क्यों लगवावेंगे? इस प्रकार से साधना का यह पक्ष भगवान के पूरे चरित्र में दिखाई देता है। इसीलिए जब युद्ध समाप्त होता है, तो भगवान बन्दरों को ही धन्यवाद देते हैं। भगवान बन्दरों से कहते हैं –

तुम्हरें बल मैं रावन मार्‌यो।
तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो।। ६/११७/४

मित्रो, तुम्हारे बल से ही रावण मारा गया और विभीषण को राज तिलक भी तुम्हारे ही बल से मिला। भगवान तो सर्वत्र यही बात कहते हैं। जब वे लंका से लौटकर अयोध्या आते हैं, तो गुरु वशिष्ठजी से कहते हैं –

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे।
भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे।। ७/७/८

महाराज, ये बन्दर मेरे सखा हैं। ये युद्ध में बड़े सहायक बने। इन लोगों ने हमारे लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। ये मुझे भरतजी से भी अधिक प्रिय हैं।

इन प्रसंगों का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जीवन में साधन तो पग-पग पर अपेक्षित ही है और आवश्यक भी।

किन्तु जो दूसरी समस्या है, वह बड़े महत्त्व की है। जैसे एक प्रसिद्ध बात कही जाती है कि भगवान श्रीकृष्ण ने जब गोवर्धन पर्वत उठाया, तो ग्वाल-बालों ने भी अपनी-अपनी लकड़ी लगा दी कि अकेले कृष्ण क्या उठा पाएँगे, थोड़ी सहायता हम भी तो कर दें। बालसुलभ स्वभाव में तो यह ठीक है, किन्तु उसमें एक क्रम है और वह क्रम इसी रूप में सामने आता है कि भगवान यह बताना चाहते हैं कि उनका कोई साध्य नहीं है और जिसका साध्य नहीं है, उसको साधन की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए भगवान राम ने जब पूछा कि महाराज, मैं किस मार्ग से जाऊँ, तो सुनकर भरद्वाजजी हँसे और हँसकर बोले –

सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं। २/१०८/२

तुम्हारे लिए सारे मार्ग ठीक हैं। भगवान और संत में जो व्यंग्य-विनोद हुआ वह बड़ा उत्कृष्ट था। आप जब भी किसी से मार्ग पूछते हैं, तो पहले यह बताते हैं कि आपको कहाँ जाना है और तब पूछते हैं कि वहाँ जाने का मार्ग कौन-सा है? अब चौराहे पर कोई सिपाही खड़ा हो और आप जाकर पूछें कि भई, किधर जाऊँ? आप बता नहीं रहे हैं कि आपको कहाँ जाना है और पूछ रहे हैं कि किधर जायँ, तो अगर वह विनोदी होगा, तो कहेगा कि चाहे जिधर चले जाइए। तो मानो महर्षि भरद्वाज ने विनोद किया कि आपने यह तो बताया नहीं कि आपको कहाँ जाना है और मार्ग पूछ रहे हैं। आपको कहीं पहुँचना ही नहीं है। वास्तविकता यह है कि ब्रह्म पूछे भी क्या, जब वह हर जगह विद्यमान है। उसको तो कहीं पहुँचना ही नहीं है, पर पूछ रहा है। अगर पूछ रहा है, जबकि कोई लक्ष्य नहीं है, तो चाहे जिस मार्ग से जाइए। पर भगवान ने बहुत बड़ा सूत्र दे दिया। महात्माओं से जब हम मार्ग पूछते हैं और स्थान का नाम नहीं बताते, तो उसके पीछे एक तात्पर्य है कि सांसारिक जीवन में तो हमें पता होता है कि हमें कहाँ जाना है, पर जीवन का जो चरम लक्ष्य है, उसके सम्बन्ध में लक्ष्य भी संत ही बताएँगे, और मार्ग भी संत ही बताएँगे। इसलिए विनयपत्रिका में गोस्वामीजी भगवान से कहते हैं – महाराज, इस जीवन-पथ में समस्याएँ तो हैं ही, पर सबसे बड़ी समस्या यह है कि – **नाऊँ गाऊँ कर भूला रे।** हम उस गाँव का नाम ही भूल गये, जहाँ हमें पहुँचना है। तो यहाँ भी भगवान का संकेत यह था कि संत ही व्यक्ति की योग्यता देखकर उसे लक्ष्य बताते हैं और उसको मार्ग बताते हैं। प्रभु जब तक महर्षि भरद्वाज से मार्गदर्शन नहीं ले लिए, तब तक नहीं चले। इस तरह भगवान अपने जीवन-चरित्र में पग-पग पर साधक जैसा आचरण करते दिखाई दे रहे हैं। इसका अर्थ है कि साधन तो जीवन में अनिवार्य है। किन्तु साधन की अनिवार्यता का परिणाम यह न हो कि साधन करनेवाला व्यक्ति सचमुच यह मानने की भूल कर बैठे कि जो कुछ भगवान के द्वारा हो रहा है, वह हमारे साधना का फल है। उसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि जैसे किसी ने किसी संत से पूछा – भगवान की कृपा कैसे होगी? तो वे यही कहेंगे कि जो कैसे होती है, वह कृपा ही नहीं है। कैसे जो होता है, वह तो व्यापार है कि बाजार में कोई वस्तु कैसे मिलेगी? उसका जो दाम है, उतना रुपया दे दीजिए, मिल जायेगी। वे कहते हैं कि तुम कृपा का प्रश्न करते हो, तो कैसे का प्रश्न मत करो। तब क्या करें महाराज? उन्होंने बड़ा सुन्दर दृष्टान्त दिया। उन्होंने कहा कि जैसे मेघ का जल कैसे बरसे, यह प्रश्न पूछने की आवश्यता नहीं है। मेघ तो अपने स्वभाव से जल का वर्षण करता है। अपनी मौज से जल बरसाता है। हाँ, तुम यह पूछ सकते हो कि मेघ का जल बरस रहा हो, तो हमें कैसे मिले? उसे पाने का एक ही उपाय है। घड़ा अगर भरा हुआ है, तो कितना भी पानी बरसे, उसमें वर्षा का जल प्रवेश नहीं करेगा। यदि घड़ा खाली भी है, किन्तु उलटा करके रखा हुआ है, तो भी उसमें एक बूँद भी पानी नहीं आएगा। तो घड़े का खाली होना भी अनिवार्य है और उसको सीधा रखना भी अनिवार्य है। उन्होंने कहा, वस्तुत: साधना के द्वारा प्रभु की कृपा प्राप्त नहीं होती। साधन के द्वारा हम रिक्त हो जाते हैं। रिक्त हो जाना माने? जब अपने साधन की समस्त सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं, साधन के द्वारा जो कुछ कर सकते थे, वह कर चुके और उसके बाद जब यह अनुभव होने लगे कि हमारी साधना सक्षम होते हुए भी, साध्य की प्राप्ति नहीं हो रही है, तब व्यक्ति भगवान की कृपा की याचना करता है।

संसार में साधना के द्वारा, इतनी उत्कृष्ट वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं कि ब्रह्मलोक तक व्यक्ति पहुँच सकता है, लेकिन साधना के द्वारा जिसे नहीं पाया जा सकता, वह तो ब्रह्म है और उसका सीधा-सा तात्पर्य है कि बाजार में जो वस्तु बिकेगी, वह तो तौलकर ही बिकेगी। संसार में जितने पदार्थ हैं, उसकी तौल है, उसकी सीमा है और ईश्वर तो असीम है। जो असीम है, वह हमारी साधना से

कैसे मिलेगा?

किन्तु जब अपनी अक्षमता का अनुभव हो जाए और अनुभव होने के बाद जब हम स्वयं खाली होकर अपने को प्रभु के सामने कर देते हैं, तब कृपा बरसती है। प्रभु कहते हैं –

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। ५/४३/२

भगवान के सन्मुख होने का अभिप्राय है, रिक्तता को भगवान के सामने खोल देना और दूसरा संकेत यह है कि रिक्तता है, पर उसको हम दिखाने की चेष्टा ही नहीं करते। घड़े को उलटा करके रख दीजिए, पता ही नहीं चलेगा कि इसमें क्या है और क्या नहीं? इसलिए, साधन के द्वारा भगवान की कृपा नहीं होती, किन्तु साधन के माध्यम से हम कृपा को ग्रहण करते हैं। बस इतनी भूमिका है साधन की।

जब भगवान बन्दरों से घिरकर यात्रा करते हैं, तो उसका अभिप्राय यह है कि भगवान स्वयं कृपामय होते हुए भी साधन पक्ष को पग-पग पर महत्त्व देते हुए दिखाई देते हैं। पर साथ-साथ साधना पक्ष की जो कमियाँ हैं, उसका भी दर्शन होते जाता है क्या? रामायण में बन्दरों में कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो कभी न हारा हो। इसमें नल, नील, द्विविध, मयन्द की बात तो छोड़ दीजिए, स्वयं हनुमानजी महाराज इसके अपवाद नहीं हैं। इसके अपवाद अंगद भी नहीं हैं। लिखा हुआ है कि कुम्भकर्ण के ऊपर हनुमानजी महाराज ने प्रहार किया, तो कुम्भकर्ण मूर्छित हो गया, पर कुम्भकर्ण ने हनुमानजी पर प्रहार किया, तो हनुमानजी भी मूर्छित हो गये। यह सुनकर आपलोग आतंकित मत हो जाइएगा कि जिन हनुमानजी को हम इतना सब कुछ मानते हैं, वे भी कुम्भकर्ण के प्रहार से मूर्छित हो गये। गोस्वामीजी ने कहा –

पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता।
घुर्मित भूतल परेउ तुरंता।। ६/६४/८

इसमें एक बड़े महत्त्व का पक्ष है कि एक ही ऐसा योद्धा था, जो लंका के युद्ध में पूरे समय लड़ा और कभी नहीं हारा और वे हैं जाम्बवंत। पर जाम्बवंत का सौभाग्य नहीं, दुर्भाग्य था। अब यों कहें कि वे सबसे महान अजेय योद्धा थे, पर भगवान तो बड़े कौतुकी हैं। ये जाम्बवान सतयुग में भी हैं, त्रेतायुग में भी हैं और द्वापर युग में भी हैं। बहुत सुन्दर संकेत है। उस पर आपकी दृष्टि गई होगी या जानी चाहिए। जब समुद्र के किनारे यह चर्चा हो रही है कि समुद्र को कैसे पार करें, तो उस समय सबकी दृष्टि सबकी ओर जाती है। सभी बन्दरों ने कह दिया कि हमारे लिए यह सम्भव नहीं है। किन्तु जाम्बवानजी अपना पुराना संस्मरण सुनाने लगे। जो बड़े कार्य करनेवाले वृद्ध होते हैं, उनको पुरानी बातें बहुत याद आती हैं कि मैंने कितने बड़े-बड़े कार्य किए। उन्हें लगता है कि सामनेवाला मुझे ठीक से न जानता हो कि मैं इतने बड़े-बड़े कार्य कर चुका हूँ। यह बड़ी कठिन समस्या है। परशुरामजी जब लक्ष्मणजी से रुष्ट हुए, तो उन्होंने विश्वामित्रजी से कहा, सुनाओ इसे मेरा इतिहास कि मैं कौन हूँ। यही शब्द आता है कि तुम बताओ इसे। लक्ष्मणजी ने ऐसे ही विनोद में कह दिया –

अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी।
बार अनेक भाँति बहु बरनी।। १/२७३/६

आपने स्वयं ही इतना सुना दिया, अब दूसरों को कष्ट क्यों दे रहे हैं। यद्यपि लक्ष्मणजी एक दूसरे पक्ष का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इसका अभिप्राय यह है कि वह सात्त्विक अभिमान है। जिनमें तमोगुणी और रजोगुणी अभिमान नहीं होता है, वह एक प्रकार का सात्त्विक अभिमान है। वे जो श्रेष्ठ कार्य किए हुए होते हैं, उसकी उनको याद आती है। सम्भवत: एक दिन बात आई थी। एक सज्जन हैं, वे घर-बार छोड़कर साधुभाव से रहते हैं, पर एक दुर्बलता बनी हुई है कि जब उनका नाम छपता है, तब वे यह लिखवाना नहीं भूलते कि भूतपूर्व एम.एल.ए.। अब भला इसकी क्या आवश्यकता है? वे अभी भी हैं, यह बात नहीं कि वे बुरे या तुच्छ व्यक्ति हैं। वे बहुत अच्छे व्यक्ति हैं, लेकिन एक मानसिकता है। इसी दृष्टि से गोस्वामीजी ने कह दिया –

कोउ भल कहउ, देउ कछु,
असि बासना न उरते जाई।।

विनय पत्रिका, पद संख्या १९९/२

इसका छूटना इतना कठिन है – कोई कुछ दे और कोई कुछ कहे। अगर द्रव्य दे, तो द्रव्य की भी माँग होती है। पर द्रव्य की माँग भी छूट जाय, तो इच्छा बनी रहती है कि कम-से-कम कुछ कहे तो कि ये तो बड़े त्यागी हैं। ये तो पैसा को छूते भी नहीं हैं। ये तो कुछ नहीं लेते, यह सुने बिना उनको भी चैन नहीं मिलती है। **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (८)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

फरवरी, १९७० में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी लखनऊ आश्रम में 'विवेकानन्द पॉलीक्लीनिक' के उद्घाटन के लिए गए। हम सब लगभग एक सौ साठ साधु वहाँ एकत्रित हुए थे। स्वामी श्रीधरानन्द जी ने बहुत सुन्दर व्यवस्था की थी। साधुओं को ब्रह्मावर्त, अयोध्या एवं नैमिषारण्य देखने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ। प्रभु महाराज हुक्का पीते थे। स्वामी श्रीधरानन्द जी ने उनके हुक्के के लिए लखनऊ का बहुत मँहगा और सुगन्धी तम्बाकू खरीदा। उसका सेवन कर महाराज बहुत आनन्दित हुए और स्वामी श्रीधरानन्दजी से बोले, ''अरे, तुमने मुझे तो हुक्का पिलाया, किन्तु बेलूड़ मठ में विकास, द्वारका और हितानन्द भी हुक्का पीते हैं। उनके लिए भी थोड़ा यह तम्बाकू खरीदो।'' इससे यह समझ में आता है कि महाराज अन्य साधुओं का किस प्रकार ध्यान रखते थे।

तब मैं बेलूड़ मठ के प्रशिक्षण केन्द्र में था। स्वामीजी के जन्मदिन के उपलक्ष्य पर मुझे स्वामीजी के कमरे में सेवा दी गई। भक्तगण स्वामीजी को निवेदन करने के लिए विभिन्न प्रकार की महँगी सिगरेट लाते थे। मेरा काम था दिन में कुछ बार सिगरेट जलाकर उसे स्वामीजी की टेबल पर एक सिगरेट-ट्रे पर रखना। सन्ध्या के बाद स्वामीजी को भोग-निवेदन करने के बाद प्रभु महाराज स्वामीजी के कमरे में आए। स्वामीजी की पादुका पर प्रणाम कर वे मुझसे बोले, ''देखो तो, स्वामीजी का और सिगरेट प्रसाद है कि नहीं?'' मैंने उन्हें कुछ पैकेट दिए और वे उन्हें ले गए। मैंने बहुत बार उन्हें हुक्का अथवा सिगरेट पीते समय गम्भीर चिन्तन में डूबे हुए देखा है।

प्रभु महाराज में भावनाओं का अतिरेक कभी देखा नहीं, किन्तु साधुओं के प्रति उनका प्रेम उनके कार्य और बातों में झलकता था। वे साधुओं के प्रति बहुत क्षमाशील थे। कर्मविमुख साधुओं को वे दीर्घकाल तक बेलूड़ मठ में रख देते और फिर उन्हें काम पर लगाते। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, ''देखो, इस संघ में विभिन्न प्रकार के साधु हैं। हमें सबको साथ में लेकर चलना है। कम्बल का एक-एक धागा निकालने से अन्त में कम्बल ही नहीं बचेगा।'' वे बोलना चाहते थे कि कोई भी पूर्णत: निर्दोष (perfect) नहीं है। हम ठाकुर के संघ में पूर्ण (perfect) होने के लिए आए हैं। गुण-दोष तो मनुष्य में होते ही हैं। वे सभी को साधु-जीवन यापन करने का अवसर देते थे।

१९६५ के मार्च महीने की बात है। मैंने महाराज से कहा, ''महाराज! हमारे प्रशिक्षण केन्द्र के द्वितीय वर्ष के समावर्तन समारोह में आपको आना होगा।'' महाराज सहमत हुए और कहा, ''तुम स्वामी यतीश्वरानन्द जी को भी सभापति होने के लिए निमन्त्रण दो।'' उनके कथनानुसार स्वामी यतीश्वरानन्द जी को मैं निमन्त्रण देने गया, किन्तु वे पहले राजी नहीं हुए। मैंने उन्हें थोड़ा चपलतापूर्वक कहा, "Maharaj, how can there be convocation without the Vice-chancellor? – महाराज! कुलपति के बिना दीक्षान्त समारोह कैसे होगा?'' उनसे अच्छी डाँट मिली। वे निश्चित ही आए और साधु-जीवन के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक बातें कहीं। यदि वे सब लिखी होतीं, तो कितने मूल्यवान उपदेश संरक्षित होते।

अक्तूबर, १९६५ में स्वामी माधवानन्द जी की महासमाधि के बाद संघाध्यक्ष का पद कुछ महीने रिक्त था। अन्तत: १९६६ में श्रीरामकृष्ण देव की जन्मतिथि (२२ फरवरी, १९६६) के दिन प्रभु महाराज संघ के दशम संघाध्यक्ष हुए। उस दिन उन्होंने ब्रह्मचर्य और संन्यास दीक्षा भी दी। उस दिन मुझे उनसे ब्रह्मचर्य दीक्षा प्राप्त हुई और १९ फरवरी, १९६९ को उनसे संन्यास-दीक्षा प्राप्त हुई। जनवरी, १९७१ के प्रारम्भ में स्वामी निर्वाणानन्द जी महाराज ने मुझे अद्वैत आश्रम से बुलाकर कहा, ''मैंने हॉलीवुड आश्रम के लिए तुम्हारा नाम सूचित किया है। प्रभु महाराज यदि तुमसे कुछ पूछें, तो तुम 'ना' मत कहना।'' इसके बाद एक दिन प्रभु महाराज ने अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष स्वामी बुधानन्द जी को फोन कर उन्हें तीन बजे के भीतर बेलूड़ मठ में मिलने के लिए कहा, क्योंकि उस दिन चार बजे की मीटिंग में मेरे अमेरिका जाने के विषय में चर्चा होने वाली थी। स्वामी

बुधानन्द जी भोजनोपरान्त टैक्सी कर बेलूड़ मठ गए और महाराज से मिले। महाराज ने उनसे मेरे स्थानान्तरण के विषय में कहा। स्वामी बुधानन्द जी अनिच्छापूर्वक सहमत हुए। १९७१ में स्वामीजी के जन्मदिन पर स्वामी गम्भीरानन्द जी ने मुझे बुलाया और हॉलीवुड जाने के लिए कहा।

इसके बाद मैंने प्रभु महाराज से कहा, ''महाराज! मैंने दक्षिण भारत कभी देखा नहीं, कृपया मुझे एक महीने का अवकाश दीजिए।'' उन्होंने सानन्द अनुमति दी। तब मैं चेन्नई, तिरुपति, त्रिचि, रामेश्वरम्, मदुरै, त्रिवेन्द्रम्, कन्याकुमारी, कोयम्बटूर, ऊटी, मैसूर, बेंगलुरु, चेन्नई होकर कोलकाता वापस आया। ३१ मई, १९७१ में मुम्बई के गेट-वे-ऑफ इन्डिया पर स्वामीजी की मूर्ति के अनावरण के उपलक्ष्य पर बहुत बड़ा कार्यक्रम हुआ। स्वामी हिरण्मयानन्द जी तब मुम्बई आश्रम के अध्यक्ष थे। प्रभु महाराज, भरत महाराज, सूर्य महाराज एवं अन्य विशिष्ट संन्यासी इस कार्यक्रम में उपस्थित हुए। २४ मई को स्वामी गम्भीरानन्द जी और स्वामी निर्वाणानन्द जी के साथ मैं मुम्बई गया। उस समय मुम्बई आश्रम में एक ग्रूप-फोटो भी खींचा गया।

मेरी अमेरिका यात्रा का दिन १ जून था। मुझे स्पष्ट स्मरण है, प्रभु महाराज से विदाई लेते समय मैंने उनसे कहा, ''महाराज ! मैं नहीं जानता कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। मैं विदेश कभी गया नहीं और मुझे बहुत अनुभव भी नहीं है। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए।'' वे मुझे अभय वाणी में बोले, ''भय मत करो। तुम हॉलीवुड में ठाकुर का काम करने जा रहे हो। ठाकुर तुम्हें देखेंगे।'' उन्होंने कुछ मिठाई और एक आम दिया।

जुलाई, १९७७ में हॉलीवुड से मैं सबसे पहले बेलूड़ मठ आया। प्रभु महाराज को प्रणाम किया। उन्होंने हँसते हुए सेवक से कहा, ''इसके सिर पर गंगाजल छिड़को। एक कुर्सी लाओ।'' मैं उनके चरणों के पास जमीन पर बैठकर उनसे बोला, ''महाराज, आपके सामने कुर्सी पर बैठने में संकोच हो रहा है।'' तब उन्होने हँसकर कहा, ''तब इसके लिए एक टेबल लेकर आओ।'' इसके बाद उनके साथ पाश्चात्य कार्य के विषय में बहुत बातें हुईं।

१९७८ में सेंट लुई, अमेरिका में स्वामी सत्प्रकाशानन्द जी को सहायता करने के लिए मेरा वहाँ स्थानान्तरण हुआ। १९७९ में स्वामी सत्प्रकाशानन्द जी ने देहत्याग किया। इसके बाद प्रभु महाराज ने मुझे दीक्षा प्रदान करने की अनुमति दी और क्या मन्त्र देना होगा, इत्यादि सब बातें लिखकर भेजीं।

१९८२ में जब मैं बेलूड़ मठ लौटा, तब प्रभु महाराज के साथ अनेक बातें हुईं। सब स्मरण नहीं है। उन्होंने श्रीमाँ सारदा देवी से अपनी दीक्षा की घटना बताई। वे, हरीश महाराज (स्वामी सत्प्रकाशानन्द जी), शरदिन्दु महाराज (स्वामी विश्वनाथानन्द जी) हावड़ा से मार्टिन लाईन की ट्रेन कर चापाडांगा पहुँचे। इसके बाद उन्होंने पैदल चलना शुरू किया। मार्ग में हरीश महाराज को भयंकर पेचिश हो गई। उनके लिए एक बैलगाड़ी भाड़ा की गई। किन्तु उनका रोग का उपशम नहीं हो रहा था। प्रभु महाराज ने कहा कि इस अवस्था में इन्हें जयरामवाटी ले जाना उचित नहीं होगा। माँ बहुत चिन्तित हो जाएँगी। उन्हें कष्ट देना ठीक नहीं होगा। इसके बाद उन्होंने निश्चित किया कि हरीश महाराज उसी बैलगाड़ी द्वारा फिर से चापाडांगा लौट जाएँगे और शरदिन्दु महाराज भी उनके साथ जाएँगे। प्रभु महाराज ने बताया कि जयरामवाटी जाते समय उन्होंने एक रात द्वारकेश्वर नदी की बालू पर बिताई। इसके बाद वे कामारपुकुर होकर जयरामवाटी गए और माँ से दीक्षा प्राप्त की।

बेलूड़ मठ रहते समय अनेक घटनाएँ याद आ रही हैं। महाराज तब महासचिव थे। पुरानी मिशन ऑफिस के ऊपर के कमरे में महाराज से मैं बात कर रहा था। उसी समय मठ के नाई राममूरत ने महाराज के कमरे में आकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और बोला, ''प्रभु, मेरे अवगुन चित्त न धरो।'' महाराज हा-हा कर हँसने लगे। उस दिन महाराज का मुंडन करने का दिन था, किन्तु राममूरत भूल गया। इसलिए शाम के समय महाराज के पास आकर उसने क्षमा माँगी।

प्रभु महाराज तब संघाध्यक्ष थे। हम सब महाराज को प्रणाम करने गए। स्वामी गुणातीतानन्द महाराज भी वहाँ उपस्थित थे। वे बड़े पण्डित थे, किन्तु उनका सिर थोड़ा खराब था। वे प्रभु महाराज के पास आकर बोले, ''प्रभु, तुम संघाध्यक्ष हो गए हो। सब कुछ तुम्हारे पास आता है। मैं तुम्हारे यहाँ से नारियल-पानी लेता हूँ।'' महाराज हँसकर बोले, ''केवल नारियल-पानी ही क्यों, तुम्हारी जो आवश्यकता हो, सब लेकर जाओ।''

एक दिन स्वामी दयानन्द जी बेलूड़ मठ आए। वे संघगुरु को प्रणाम करने जा रहे थे कि इतने में प्रभु महाराज कुर्सी से

शेष भाग पृष्ठ ३६० पर

काव्य-सरिता

धन्य ब्रज भूमि पद चूमत कन्हैया के

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

वसुदेव देवकी–से पुन्य कहो काके ऐसे,
भाग्य कहाँ जैसे नन्द यशोमति मैया के ।
छोटो से बछैया जाको कान्ह लिए कैंया सखि,
देखो तो सौभाग्य आज गोकुल की गैया के ।।
वन्दनीय यमुना कदम्ब की सुखद छाँह,
गोपी ग्वाल श्याम सहयोगी ताता थैया के,
धन्य वे मयूर संग घूमत हैं झूमत हैं,
धन्य ब्रज भूमि पद चूमत कन्हैया के ।।

जय-जय-जय महाकाल

पुरुषोत्तम नेमा

पल-घटिका-दिन-माह-अयन,गण स्वरूप सदा संग,
कर रही किलोल शीस, त्रिविध ताप नाशी गंग,
जय त्रिनेत्र-देवाधिदेव सूक्ष्म तम हे अति विशाल !
जय-जय-जय महाकाल !
अगाध-दुस्तर कर्मसिन्धु, क्षुद्र-तुच्छ मीन हम,
विकार मत्स्य इर्द-गिर्द, तरण शक्तिहीन हम,
कृपा-दृष्टि निपट जायें – आयें जो भी जाल काल !
जय-जय-जय महाकाल !
डिम डिम डिम घोष प्रिय भस्म भूषित गौर काय,
हर हर हर आरति हर, त्रिदल बेल-पत्र भाय,
छानें भंग नचे भूत बगड़ बम की दिव्य ताल !
जय-जय-जय महाकाल !
भव स्वरूप भवारि भी, प्रिया भवानि भर्त्ता तुम,
शमित शाप, पाप-ताप, काम तमाम कर्ता तुम,
चन्द्रामृत झरित वदन, शीतल कर विषम ज्वाल !
जय-जय-जय महाकाल !
आशुतोष-क्वचित रोष, बाबा हे बर्फानी !
भस्मासुर-भय भाग रहे, ऐसे औघड़ वरदानी,
कंगाल - कितने ही बने, माला माल-बजा गाल !
जय-जय-जय महाकाल !
हे अनन्त हे अनादि, विश्वम्भर हे प्रलयंकर !
आधि-व्याधि ग्रसित-तप्त, समाधि तजो शिव शंकर !
दुष्टों के लिए खुले - तृतीय नेत्र हे कराल !
जय-जय-जय महाकाल !

तुलसी विलक्षण सन्त हैं

कमलसिंह सोलंकी

साहित्य हिन्दी में कवि तुलसी विलक्षण सन्त हैं,
लोकहित में रच दिए द्वादस अमर सद्ग्रन्थ हैं ।
गोस्वामीजी का चिर ऋणी हिन्दू और हिन्दुस्तान,
युगों आलोकित रहेगा अध्यात्म भक्ति पन्थ है ।।
अर्थ और भाषा सरल, मानस का अनुपालन सरल है,
आत्मशान्ति के लिए तुलसी का मानस गजल है ।
उपदेश तुलसीदास के पर ध्यान हम देते नहीं,
सुधारस को छोड़कर जन मस्त हो जाते गरल हैं ।।
आज तक संसार में तुलसीदास का सानी नहीं,
जगत में हनुमानजी-सा है कोई ज्ञानी नहीं ।

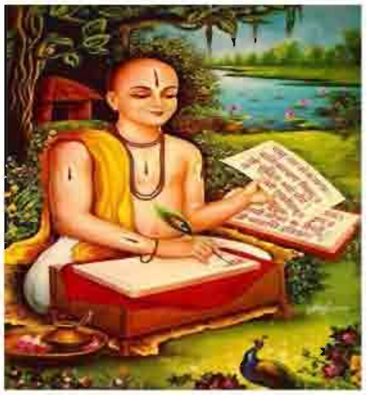

रामचरितमानस का जिसने सहारा पा लिया,
श्रीराम जैसे जगत में कोई वरदानी नहीं ।।
जो कथा श्रीराम की शिव ने उमाजी को सुनाई,
वही याज्ञवल्यक्य ने भारद्वाज मुनिजी को बताई ।
कमल कागभुसुंडि ने श्री गरुड़जी को सुनाई,
वही श्री रघुनाथ गाथा महाकवि तुलसी ने गाई ।।
श्रीरामजी के भजन से कटत पाप और क्लेश हैं,
मानस में तुलसीदासजी के ये ही प्रमुख सन्देश हैं ।
हर प्रश्न का उत्तर मिले मानव को जीवन के लिए,
आचार संहिता है मनुज की कठिनतम उपदेश हैं ।।
सन्त कवि मानस प्रवक्ता तुलसी कवि को गा रहे,
विद्वान पंडित मंच से सब भक्ति रस बरसा रहे ।
मील का पत्थर मानस भक्ति और साहित्य में,
आधार मानस को बना जग में ख्याति पा रहे ।।

मुझे परमवीर चक्र चाहिए

स्वामी पद्माक्षानन्द

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

सेना में साक्षात्कार के समय जब एक युवक से पूछा गया कि 'तुम सेना में भर्ती क्यों होना चाहते हो?', तब उस उत्साही युवक ने बेझिझक उत्तर दिया था कि 'मैं सेना में केवल और केवल परमवीर चक्र पाने के लिए ही भर्ती होना चाहता हूँ।' वह नवयुवक कोई और नहीं उत्तरप्रदेश के सीतापुर जिले के रुधा गाँव में दिनांक २५ जून, १९७५ को जन्मे मनोज कुमार पाण्डेय थे। इस वीर सपूत के पिता श्री गोपीचन्द्र पाण्डेय तथा माँ श्रीमती मोहिनी पाण्डेय थीं।

मनोज के पिताजी एक छोटी-सी पान की दुकान चलाकर अपने परिवार का भरण-पोषण किया करते थे। पिताजी पर पढ़ाई का भार अधिक नहीं आये, इसलिए स्वाभिमानी मनोज अपने पढ़ाई का अधिकांश व्यय स्वयं वहन करते थे। मनोज माता-पिता की प्रथम सन्तान थे।

किसी मनुष्य के चरित्र-गठन में उसकी माँ की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। मनोज के साथ भी ऐसा ही हुआ। देश के लिए प्राण न्योछावर करने वाले वीर मनोज के चरित्र का निर्माण उनकी माँ की शिक्षाओं द्वारा हुआ था। उनकी माँ बालक मनोज को बचपन से ही वीरता तथा सच्चरित्रता की कहानियाँ सुनाया करती थीं। वे मनोज का हौसला बढ़ाया करती थीं कि वह जीवन के किसी भी मोड़ पर कभी भी चुनौतियों से घबराये नहीं, बल्कि पूरी बहादुरी से उनका सामना किया करे और अपने जीवन को यश और सम्मान के लिए न्योछावर करे।

मनोज की पढ़ाई सैनिक विद्यालय तथा रानी लक्ष्मीबाई मेमोरियल सीनियर सेकेन्डरी स्कूल, लखनऊ में हुई थी। सैनिक विद्यालय में पढ़ाई करते समय ही उनके मन में देशप्रेम तथा अनुशासन की भावना दृढ़ रूप में अंकित हो गयी। मनोज को बचपन से ही बॉक्सींग और बॉडी बिल्डिंग जैसे खेलों में रुची थी। और वे हर काम में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया करते थे। बारहवीं की पढ़ाई पूरी करने के बाद मनोज प्रतियोगिता में सफल हुए और पुणे के पास स्थित राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला में भर्ती हो गये। प्रशिक्षण पूरा करने के बाद मनोज गोरखा रायफल्स रेजिमेंट की १/११ के अधिकारी हुए और उनकी तैनाती कश्मीर घाटी में हुई। तैनाती के दूसरे ही दिन मनोज ने अपने एक सीनियर लेफ्टिनेंट पी.एन.दत्ता के साथ एक महत्त्वपूर्ण दायित्व को पूर्ण किया। एक बार मनोज को गश्त लगाने के लिए भेजा गया। लेकिन वे समय पर वापस नहीं आये, जिससे सभी चिन्तित हो गये। दो दिन बाद जब वे वापस आये, तब कमांडिंग ऑफीसर ने उनसे देर से आने का कारण पूछा। मनोज ने कहा कि उनका उग्रवादियों से सामना नहीं हुआ, इसलिए वे उनकी खोज में आगे बढ़ते चले गये। एक बार मनोज युवा अफसरों के प्रशिक्षण के लिए गये हुए थे। उसी समय उनको ज्ञात हुआ कि उनकी बटालियन को सियाचिन भेजा जा रहा है। वे इससे बहुत परेशान हो गये कि इस प्रशिक्षण के कारण वे वहाँ नहीं जा पाएँगे।

जब इस टुकड़ी को जोखिम भरे काम करने का मौका आया, तब मनोज ने अपने कमांडिंग ऑफीसर को पत्र लिखा था, यदि उनकी टुकड़ी को उत्तरी ग्लेशियर की ओर भेजा जा रहा है, तो उन्हें 'बाना चौकी' और यदि उनकी टुकड़ी को सेन्ट्रल ग्लेशियर की ओर भेजा जा रहा है, तो उन्हें 'पहलवान चौकी' दिया जाय। ये दोनों चौकियाँ बहुत ही खतरों से भरी हुई चौकियाँ हैं। वहाँ के लिए अधिक जोखिम और साहस की आवश्यकता होती है। अदम्य उत्साह और साहस से भरपूर वीर मनोज 'पहलवान चौकी' पर लम्बे समय तक तैनात रहे थे। 'पहलवान चौकी' समुद्र तल से १९७०० फीट की उँचाई पर स्थित है।

मनोज पाण्डेय की टुकड़ी सियाचिन की चौकी की पहरेदारी करके कुछ ही दिनों पहले वापस लौटी थी। तभी ३ मई, १९९९ ई. को कारगिल युद्ध का संकेत मिल गया।

बहादुर मनोज अपने आराम करने की बात भूलकर दुश्मनों से युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। यदि वे चाहते, तो उनको छुट्टी भी मिल सकती थी, क्योंकि वे अभी-अभी ही सियाचिन की चौकी से वापस आये थे। वे पहले ऐसे अफसर थे, जिन्होंने कारगिल युद्ध के 'ऑपरेशन विजय' में सम्मिलित होने के लिए अपनी ओर से पहल की थी।

गोरखा राइफल्स १/११ को कारगिल के कठिन मोर्चो में से एक बटालिक सेक्टर के 'खालूबार' को फतह करने की जिम्मेदारी दी गयी। युद्ध के दौरान ही मनोज कुमार पाण्डेय को पदोन्नति करके लेफ्टिनेंट से कैप्टन बनाया गया। पाकिस्तानी घुसपैठिए ऊँचें पहाड़ों पर बैठकर भारतीय सैनिकों की गतिविधियों को देख रहे थे और उन पर निशाना लगाकर गोलीबारी कर रहे थे। कैप्टन मनोज अपनी पलटन के साथ २-३, जुलाई १९९९ को खालूबार फतह करने के लिए निकले। भारतीय बंकरों में कब्जा जमाए घुसपैठियों ने मनोज की कंपनी को आते हुए देखकर उन पर भारी गोलाबारी शुरू कर दी। मनोज ने अपने कुशल नेतृत्व से अपनी पलटन को एक सुरक्षित स्थान पर ले जाकर जवाबी कारवाई के लिए रणनीति बनायी। सूरज के उजाले में दुश्मन उनकी क्रियाकलापों को आसानी से देख सकते हैं, इसलिए वे चाहते थे कि सुबह होने से पहले ही उनकी टुकड़ी खालूबार के पोस्टों पर अपना कब्जा जमा ले। दुश्मनों के यमराज मनोज ने अपने कुछ साथियों के साथ दुश्मन के पहले ठिकाने पर हमला किया और दो घुसपैठियों को मार गिराया। इसके तुरन्त बाद उन्होंने दूसरे ठिकाने पर भी हमला करके दो और दुश्मनों को मार गिराया। खालूबार के दो ठिकाने ध्वस्त होने पर पाकिस्तानी घुसपैठियों की पकड़ कमजोर हो गयी। इसके बाद उन्होंने तीसरे ठिकाने पर धावा बोला। इसी दौरान दुश्मन की गोली आकर मनोज के कन्धे और पाँव पर लगी और वे गम्भीर रूप से घायल हो गये।

एक बार मनोज की माँ ने पुत्र मोह में मनोज से कहा था कि जब लड़ाई होगी, तो तुम पीछे रहना और अपने जवानों को आगे कर देना। मनोज ने उत्तर दिया था, 'माँ यदि तुम और हम साथ जा रहे हैं और कोई मुसीबत आ जाती हैं तो तुम क्या करोगी?' उनकी माँ ने कहा था, 'उस मुसीबत का सामना पहले मैं करूँगी।' मनोज ने माँ को समझाया, 'माँ, वे जवान भी मेरे बेटे जैसे हैं, इसलिए सबसे आगे मैं जाऊँगा।' जख्मी होने के बावजूद भी मनोज अपने साथियों की रक्षा के लिए आगे बढ़ते रहे। दुश्मनों के तीसरे ठिकाने को ध्वस्त करने के समय ही एक गोली आकर मनोज के सिर में लगी। सिर में गोली लगने के बावजूद भी वीर सपूत ने ग्रेनेड से दुश्मन के चौथे ठिकाने को ध्वस्त कर दिया और तय समय सीमा के भीतर ही खालूबार की चोटी पर तिरंगा फहरा दिया। मनोज केवल २४ वर्ष की आयु में ३ जुलाई, १९९९ को शान से भारतमाता की गोद में सदा के लिए सो गये।

मनोज की अभिलाषा पूर्ण हुई। कारगिल युद्ध में अदम्य साहस, असाधारण वीरता, कुशल नेतृत्व और सर्वोच्च बलिदान के लिए कैप्टन मनोज कुमार पाण्डेय को मरणोपरान्त सेना के सर्वोच्च सम्मान 'परमवीर चक्र' से अलंकृत किया गया। वीर कभी मरते नहीं, वे लोगों के दिलों में अमर हो जाते है। कैप्टन मनोज कुमार पाण्डेय की वीरता आनेवाले पीढ़ियों को देश के लिए बलिदान हेतु हमेशा प्रेरणा देती रहेगी। OOO

नमोऽस्तुते देववरार्थित क्रियाकृते समस्तान्मनुजेयशस्विने।
'बूड़ो तु गोपाल' इति प्रथाधृते तीर्थाटनेलब्धसुपुण्यवर्मणे।।

प्रभु का ईप्सित कर्म करने वाले, मनुष्य समाज में सम्यक रूप से यशस्वी, तीर्थ पर्यटन के द्वारा लब्ध पुण्यमयविग्रह, 'बुड़े गोपाल' (स्वामी अद्वैतानन्द) नाम से प्रसिद्ध, तुमको प्रणाम।।

बेलूड़ मठ में नवागत ब्रह्मचारिगण गोपालदा के साथ कार्य करते थे, परन्तु आधुनिक स्कूल-कालेजों से निकले तथा बाग-बगीचे के कार्य करने में अनभ्यस्त नयी पीढ़ी उनके साथ ताल मिलाकर कार्य नहीं कर पाती थी। इसके फलस्वरूप कभी कभी गोपालदा क्षुब्ध हो जाते तथा उन्हें आड़े हाथों लेते। परन्तु एक दिन श्रीरामकृष्ण ने उन्हें दिखाया कि सर्वभूतों में वे स्वयं ही विराजमान हैं। इस अनुभूति के बाद उनका यह स्वभाव बिल्कुल ही बदल गया। तब से वे कहा करते थे, ''सर्वभूतों में वे ही विराजमान हैं। किसकी निन्दा करूँ और किसकी आलोचना करूँ?'' यह ठाकुर का संसार है और ये सभी ठाकुर की ही सन्तान हैं – इसी मनोभाव के साथ उन्होंने अपने जीवन के शेष दिन बिताये थे।

(स्वामी अद्वैतानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग १६ संन्यासी शिष्यों मे से एक थे।)

धर्म और विज्ञान : एक विश्लेषण

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। – सं.)

(गतांक से आगे)

जब हम विज्ञान के इतिहास का अवलोकन करते हैं, तो देखते हैं कि विज्ञान की परम्परा आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई थी। वैज्ञानिकों ने पदार्थ को लेकर तोड़ना प्रारम्भ किया और उसे तब तक तोड़ा, जब तक उसे और विभाजित करना सम्भव नहीं हुआ। इसका उन्होंने अणु (molecule) नाम दिया। उन्होंने सोच लिया कि तत्त्व (element) की इससे छोटी इकाई और हो नहीं सकती। पर उनकी यह धारणा खण्डित होती है। लगभग ४०० से ४७० वर्ष ईस्वी पूर्व ल्यूसिप्स तथा उनके शिष्य डिमोक्रिटस आते हैं और वे अणु का विभाजन कर यह सिद्ध करते हैं कि अणु अविभाज्य नहीं, वरन् प्रत्येक अणु एक अथवा कई परमाणुओं से बना है तथा परमाणुओं के बीच में खाली स्थान है। प्रत्येक परमाणु ठोस है तथा यह तत्त्व (element) का अविभाज्य अंग है। पदार्थ में परिवर्तन उसके अन्दर निहित परमाणुओं की गति अथवा स्थिति में हुए परिवर्तन के फलस्वरूप होती है। सारा दृश्यमान जगत् परमाणुओं से बना है तथा संसार में परमाणुओं की संख्या निश्चित है। प्रकृति का एक शाश्वत, सर्वव्यापी, विश्वजनीन सिद्धान्त ही परमाणुओं की गति को संचालित करता है। प्राणियों में हम जो चेतना पाते हैं, वह भी परमाणुओं के आकस्मिक संघात के फलस्वरूप है। मनुष्य चूँकि प्रकृति का एक अंश है, अत: वह भी उन्हीं नियमों द्वारा संचालित होता है।

न्यूटन ने १६८७ में अपने ग्रन्थ 'प्रिंसिपिया' (Principia) तथा १७०४ में 'आप्टिक्स' (Optics) में न्यूनाधिक इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पर उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार किया। उनके अनुसार ईश्वर ने परमाणुओं की सृष्टि की तथा उनमें शक्ति का संचार किया, जिसके फलस्वरूप जगत की अभिव्यक्ति हुई। न्यूटन के अनुसार ये परमाणु इस प्रकार संघटित होते हैं कि उससे चेतना का उदय होता है। चेतना का विकास बाद की व्यवस्था है तथा मनुष्य इस विकास का परिणाम है। अत: मनुष्य इन नियमों के द्वारा आबद्ध है। उसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं, वह मात्र एक गुलाम है।

बाद के जो वैज्ञानिक आते हैं, वे ईश्वर के अस्तित्व को पूरी तरह नकार देते हैं। उनके अनुसार जगत की जो भी प्रक्रिया घट रही है, वह परमाणुओं के संघात के फलस्वरूप है तथा यह कार्य-कारण शृंखला के द्वारा परिचालित हो रही है, जिसमें ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। यह परमाणु सिद्धान्त ही 'Mechanical Theory of the Universe' के नाम से जाना जाता है। संसार की सृष्टि में चेतना (conciousness) का कोई स्थान नहीं है, क्योंकि चेतना तो स्वयं 'यांत्रिक प्रक्रिया' (mechanical process) का परिणाम है। इस सिद्धान्त ने वैज्ञानिकों को बड़ा उद्धत बना दिया।

पर इस सिद्धान्त को भी १९वीं सदी के अन्त में गहरी चोट लगी, जब १८९९ में 'थॉमसन', ने कैथोड रेज़ का आविष्कार किया। इसके माध्यम से उन्होंने सिद्ध किया कि परमाणु भी ठोस नहीं, वरन् वह इलेक्ट्रॉन (electron) तथा प्रोटॉन (proton) जैसे ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत कणों से युक्त है तथा न केवल परमाणु को नष्ट ही किया जा सकता है, वरन् नये परमाणु की सृष्टि भी की जा सकती है। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लार्ड सदरफोल्ड ने इसी सिद्धान्त के आधार पर सीसे के परमाणु (lead atom) से स्वर्ण परमाणु (gold atom) बनाने में सफलता अर्जित की।

इस तरह पिछले २५०० वर्षों से चला आ रहा यह सिद्धान्त कि परमाणु अविभाज्य (indestructible) है, ध्वस्त हो जाता है। यह सिद्ध होता है कि परमाणु को 'इलेक्ट्रान' और 'प्रोटॉन' में विभाजित किया जा सकता है तथा यह संसार जड़ भौतिक परमाणुओं का खेल नहीं, अपितु यह विद्युत तरंगों की उपज है, जो जड़ नहीं है। इसे 'Electrical Theory of the Matter' नाम से जाना गया।

यहाँ से मानो electronic age की शुरूआत होती है। अब वैज्ञानिक यह जानने का प्रयास करते हैं कि जिस प्रकार

molecule (अणु) के भीतर atom (परमाणु) छिपा था, उसी प्रकार उस electron के भीतर क्या छिपा है? वैज्ञानिकों में हिज़नबर्ग सामने आ जाते हैं और वे इस अनुसन्धान को आगे बढ़ाते हैं। उसमें वे बड़ी दिक्कत अनुभव करते हैं। दिक्कत यह कि इलेक्ट्रान बड़ी तेजी से भागता है, उसमें बड़ी गति है। हिज़नबर्ग के मन में आया कि जब तक हम इलेक्ट्रान को पकड़ नहीं लेते हैं, तब तक कैसे जान सकते हैं कि उसके भीतर क्या छिपा है? उन्होंने इलेक्ट्रान को पकड़ने की कोशिश की। अब किसी गतिशील वस्तु को पकड़ने का उपाय क्या है? उसके लिए दो बातों को जानना होगा। एक यह कि वह वस्तु कितनी गति से भाग रही है तथा दूसरा यह कि वह किस दिशा में भाग रही है। यदि मुझे दिशा और गति दोनों का ज्ञान हो जाय, तो बहुत सम्भव है कि मैं उस वस्तु को पकड़ने की चेष्टा कर सकता हूँ। तो हिज़नबर्ग ने यह जानने की चेष्टा की कि इलेक्ट्रान किस दिशा में भागता है और किस गति से भागता है। इस प्रयास में वह दुर्घटना घटती है, जिससे हिज़नबर्ग को एक नया सिद्धान्त घोषित करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जिसका नाम है — Heisenberg Indeterminacy Principle (हिज़नबर्ग के अनिश्चितवाद का सिद्धान्त)। वह क्या था? वे देखते हैं कि जब वे इलेक्ट्रान की गति को पकड़ने की चेष्टा करते हैं, तो उसकी गति लुप्त हो जाती है, पर दिशा बनी रहती है और जब दिशा को पकड़ने का प्रयास करते हैं, तो दिशा लुप्त हो जाती है और गति बनी रहती है। यह बड़ी विचित्र बात इलेक्ट्रान के साथ आती है। वे कुछ समझ नहीं पाते हैं कि आखिर इलेक्ट्रान इस तरह behave (कार्य) क्यों करता है। फिर वे देखते हैं कि कभी इलेक्ट्रान particle (कण) के समान behave (कार्य) करता है तो कभी wave (तरंग) के समान। कभी उसका गुण कणात्मक होता है, तो कभी तरंगात्मक। ऐसा क्यों होता है, यह समझाने में वे असमर्थ होते हैं। इसलिए वे उसका नाम देते हैं wavicle । पहली बार विज्ञान के क्षेत्र में casual relation (कार्य-कारण नियम) जिसको हम 'निमित्त' कहते हैं खण्डित होता है। इससे विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी खलबली मचती है। फिर बड़े-बड़े वैज्ञानिक आये- जेम्सजीन्स, मैक्सप्लांक तथा आइन्स्टीन आदि जिन्होंने इस खण्डित कार्य-कारण की कड़ी को जोड़ने का प्रयास किया, पर वह आज तक जुड़ नहीं पायी। हिज़नबर्ग द्वारा घोषित Principal of Indeterminacy (अनिश्चितवाद का सिद्धान्त) अभी तक विद्यमान है। तो यह आज के विज्ञान की स्थिति है। जबसे यह दुर्घटना घटी है, तबसे विज्ञान के क्षेत्र में नरमी आयी है। उसका औद्धत्य चला गया है। जो वैज्ञानिक कहता था कि मैं सारे विश्व को गणित के आँकड़े में बाँधकर रख दूँगा, आज वह यह कहने का साहस नहीं कर पा रहा है। आज के चोटी के वैज्ञानिक जिनमें आइन्स्टीन भी शामिल हैं, उस सत्ता में विश्वास करते हैं, जिसे हम ईश्वर कहकर पुकारते हैं। वह एक अवान्तर विषय है। पर मैं केवल यही बताना चाहता था कि आज के चोटी के वैज्ञानिक ईश्वर और विज्ञान की परम्परा में विरोध नहीं देख रहे हैं। पर वे इतना मानते हैं कि जो ईसाई धर्म की प्रक्रिया है, उसके माध्यम से वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को नहीं समझा जा सकता है। साथ ही वे वेदान्त का हवाला देना नहीं भूलते हैं। जैसे यदि आप एडिंगटन, जेम्सजीन्स, मैक्सप्लांक तथा श्रॉडिजर आदि की पुस्तकों को पढ़ें, तो उसमें वेदान्त और पतंजलि के योगसूत्र का हवाला पायेंगे।

हिज़नबर्ग के 'अनिश्चितवाद के सिद्धान्त' का आविष्कार होने के बाद आइन्स्टीन ने 'General theory of Relativity' तथा 'Special theory of Relativity' के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। बाद में पत्रकारों ने उनसे पूछा, "आपने जो Relativity के सिद्धान्त निकाले हैं, वह कार्य-कारण सिद्धान्त की टूटी हुई कड़ी को समझाने के प्रयास में निकले हैं न?" आइन्स्टीन ने कहा, "हाँ, मेरी चेष्टा तो यही रही है कि विज्ञान के क्षेत्र में जो कड़ी टूट गयी है, उसे समझाने का प्रयास करूँ। पर मुश्किल है कि वह कड़ी सुलझ नहीं पा रही है।" तात्पर्य यह कि न्यूटन के आने के पूर्व वैज्ञानिकों की जो स्थिति थी, एक अनजान, अदृश्य जगत में परिभ्रमण की, जहाँ उन्हें कुछ नहीं सूझ पा रहा था, वैसी ही स्थिति वे आइन्स्टीन के आने के बाद अनुभव करने लगे। **(क्रमशः)**

कर्म का फल अनिवार्य है, पर भगवान के नाम के प्रभाव से उसकी तीव्रता कम की जा सकती है। यदि तुम्हारे भाग्य में पैर का कटना बदा हो, तो कम-से-कम पैर में काँटा तो चुभेगा ही। जप-तप के द्वारा कर्मफल को बहुत कुछ काटा जा सकता है।

— श्रीमाँ सारदा देवी

सारगाछी की स्मृतियाँ (८२)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

महाराज – भोग दो प्रकार से दिया जाता है – आत्मवत् और वैधी। पहले ध्यान रखना कि ईश्वर को क्या प्रिय है – श्रीरामकृष्ण जिलेबी खाना पसन्द करते हैं। तदुपरान्त तुम्हें जो अच्छा लगे, वही ठाकुर को देना। अन्त में –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

किन्तु हम लोग जो स्तूपाकार नैवेद्य देवता के सामने रखते हैं, उसका कारण यह है कि यह जनसाधारण की पूजा है, हम सभी ठाकुर का प्रसाद खाएँगे। माँ ने देखा है कि ठाकुर के भीतर से ज्योति निकलकर नैवेद्य ग्रहण कर रही है। किन्तु जब तुम अकेले हो, तो व्यक्तिगत रूप से उन्हें व्यक्ति मानकर एक मनुष्य के समान उन्हें नैवेद्य निवेदित कर सकते हो।

मनुष्य से प्रेम करना बहुत कठिन बात है। कोई अस्थि-मांस को, कोई बुद्धि को, फिर कोई किसी गुण से प्रेम करता है, जैसे – गायन को। किन्तु प्रेम एक पूर्णत: नि:स्वार्थपरक वस्तु है।

एक प्रकार के लोग होते हैं, वे परोपकारी होते हैं। इसके पीछे कोई चैतन्य सत्ता या धर्म नहीं होता। वे केवल उपकार करना चाहते हैं। बाद में ये लोग इसे सँभाल नहीं पाते। साधु-जीवन में आत्मनिरीक्षण नहीं करने पर बड़ा संकट आता है।

मनुष्य के बारे में कुछ कहना और सोचना बड़ा कठिन है। उसे अभी एक रूप में देखा, फिर दो दिन बाद दूसरा रूप दिखता है। एक बच्चा बिस्तर पर सोने के पूर्व रामकृष्ण नाम लिखकर सोता था और साथ-साथ निद्रित हो जाता था। मेरे पास एक कैम्प खाट (फोलडिंग चारपाई) पर सोता था। किन्तु बाद में अन्य बच्चों के साथ हिल-मिलकर बिगड़ गया।

एक शिक्षक ने एक बार कहा – आजकल सब कुछ खराब हो गया है। देख ही रहे हो, सब लोग किस तरह बेबाक टिप्पणी कर जाते हैं! बात-बात में कहते हैं – 'आजकल', 'सब कुछ', 'सभी'। शहर के लोग अपने छोटे क्षेत्र को ही पूरी पृथ्वी मान लेते हैं! बाहर कहाँ क्या हो रहा है, उसे बिना देखे-सुने ही एक टिप्पणी कर देते हैं। स्वामीजी की 'प्राच्य और पाश्चात्य' पुस्तक को प्रत्येक स्कूल-कॉलेज में अवश्य पढ़ाना चाहिए। इससे भारतीय संस्कृति के गुण-दोष और यूरोपीय संस्कृति के गुण-दोष का ज्ञान होता है। स्वामीजी वर्तमान सामाजिक उथल-पुथल से बचने के उपाय के रूप में वृत्ति (जीविका) की बात कहते हैं। एकाधिकार अर्थव्यवस्था से धन-संचय होता है। हमारे देश में धन-संचय बड़ा खराब माना जाता। किसी की मृत्यु होने पर, उसके द्वारा संचित धन से ही उसका श्राद्ध किया जाता है। इसलिये कहा गया कि कंजूसी नहीं करना अर्थात् संचय मत करना।

वर्तमान काल में जो शिक्षा पद्धति प्रचलित है, इससे केवल परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ जाता है, इसमें चित्त या नैतिक चरित्र की कोई बात नहीं है, – वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तरों में यह प्रबल प्रवृत्ति होती है कि वह आन्तरिक प्रगति को बाधित करता है, फलस्वरूप यह मनुष्य को बेडौल, बेढंगा और असंतुलित बना देता है।

४-११-१९६१

प्रश्न – हम लोग बात-बात में साधुसंग, साधुसंग सुनते हैं। साधुसंग का क्या अर्थ है?

महाराज – साधुसंग का फल कैसा होता है? केवल पास में बैठे रहने से ही नहीं होता, सांस्कृतिक सम्बन्ध वर्धित करना चाहिए। एक भक्त की बड़ी इच्छा थी कि रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी की सेवा करे, किन्तु

किसी प्रकार से भी सुयोग नहीं मिलता था। अन्ततः उसने खोजते-खोजते एक उपाय ढूँढ़ ही लिया। रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी शौच के बाद जहाँ से मिट्टी लेकर हाथ साफ करते, रोज वहाँ थोड़ी-सी मिट्टी रखकर आ जाता। इस प्रकार उसने बारह वर्षों तक उनकी सेवा की। उससे ही उसे भक्ति-प्रेम हुआ। कैसे हो गया? वह रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी को देखता कि वे दोनों चैतन्यदेव के चिन्तन में विभोर हैं और वह हमेशा साधुओं का चिन्तन करता रहता। साधु को देखने से ही मन में यह विचार आता है कि इस व्यक्ति ने ईश्वर के चिन्तन में सब कुछ समर्पित कर दिया है। साधारण व्यक्ति ये सब कुछ भी समझ नहीं सकता। वे लोग ऐश्वर्य देखना चाहते हैं। यहाँ एक कुरूप जमींदार आता था। गाँव के लोग बड़े ध्यान से देखते और सोचते कि पता नहीं इसके पास कितना कुछ है!

ठीक-ठीक योगी, ध्यानी साधु नहीं होने पर लोग उसके पास जाएँगे ही नहीं और ये सब लोग जो मेरे पास अड्डेबाजी करने आते हैं, उससे उनकी कुछ भी उन्नति नहीं होती।

हमारे संन्यास के बाद (१९२८ ई.) एक-दो लोग कहने लगे, प्रेषमंत्र पाये हैं, क्या अब गायत्री मंत्र का जप करना होगा? सबने मिलकर मुझे प्रतिनिधि बनाकर महापुरुष महाराज के पास भेजा। मेरे प्रश्न पूछते ही महापुरुष महाराज ने कहा, ''संन्यास बड़ा कठिन काम है, तुम लोग नहीं समझोगे, तुम लोग सब करो, तुम लोग गायत्री मंत्र जप करो।''

प्रश्न – 'आश्चर्यवत्' क्यों कहा गया है?

महाराज – 'नित्यमुक्त' आत्मा की जीव रूप में जो बन्ध-स्वीकृति है, यही सर्वाधिक आश्चर्य की बात है! किन्तु नित्य मुक्त आत्मा का प्राकट्य अवतार के माध्यम से होता है। अवतार मनुष्य का एक ढांचा तैयार करके मनुष्य की भाषा में आत्मा के स्वरूप को दिखा जाते हैं। अवतार एक ही समय में व्यष्टि रूप से मनुष्य हैं – जब ठाकुर लाटू महाराज को कहते हैं, ''अपना हाथ हटाओ। यह ब्राह्मण शरीर है न।'' फिर सब जीवों का सुख-दुख स्वयं अनुभव करते हैं, फिर वे ही काष्ठवत् होकर निर्गुण में अवस्थित होते हैं।

एक अंशावतार भी होते हैं, जो किसी एक विशेष समय में अचानक भावस्थ हो जाते हैं, उनका वह भाव स्थायी नहीं रहता। स्वामीजी ने कहा है। (क्रमशः)

प्रेरक लघुकथा

संस्कृत सब भाषा की जननी

शरत चन्द्र पेंढारकर

एक बार संस्कृत के महापंडित की एक कार्यक्रम में प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु से भेंट हुई, तो उन्होंने प्रश्न किया, 'वनस्पति में भी प्राण होते हैं' ये विचार आपके मन में कैसे उत्पन्न हुए।' जगदीशचन्द्र ने कहा, ''आप तो संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हैं। कृपया मुझे बताएँ कि संस्कृत में अन्न के लिये कौन-सा शब्द प्रचलित है? शर्माजी ने कहा, ''संस्कृत में अन्न के लिए 'शस्य' शब्द का प्रयोग होता है।'' 'ठीक कहा आपने' बसुजी ने कहा, ''मैंने जब राष्ट्रगीत में इस शब्द को देखा, तो उसका मूल अर्थ जानना चाहा। इस शब्द के मूल में मुझे 'शस्' धातु ज्ञात हुई, जिसका मूल अर्थ है हनन या हत्या करना।'' इस आधार पर मैंने विचार किया कि अन्न की हत्या, तब होगी, जब उसमें प्राण होंगे। बस मैंने यह जानने के लिए कि क्या वनस्पतियों में प्राण होते हैं, इस शोध-कार्य में जुट गया और अन्त में इसे सिद्ध करने में सफल हुआ।''

संस्कृत को सब भाषाओं की जननी माना जाता है। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के मूल में संस्कृत शब्द हैं। शब्दों की व्युत्पत्ति या उद्‌भव मूल धातु से मालूम होती है। मूल धातु मालूम होने पर शब्द-निर्वचन जानना सुगम हो जाता है। इससे शब्द विषयक जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। ○○○

पृष्ठ ३५३ का शेष भाग

उठे और स्वामी दयानन्द जी के चरण स्पर्श किए। मैंने प्रभु महाराज को स्वामी धर्मानन्द जी को भी प्रणाम करते देखा है। मठ-मिशन का नियम है कि संन्यास-जीवन में जो वरिष्ठ हैं, उन्हें कनिष्ठ (आयु में बड़े हो, तो भी) प्रणाम करेंगे।

बेलूड़ मठ में सन्ध्या आरती के बाद प्रभु महाराज ठाकुर को प्रणाम करने जाते थे। वह दृश्य देखने जैसा था। वे कुछ अधिक समय ठाकुर के सामने खड़े रहते और उसके बाद ठाकुर की प्रदक्षिणा कर उन्हें पुनः प्रणाम करते। इसके बाद वे राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) के मन्दिर में प्रणाम कर उस मन्दिर के उत्तर-पूर्व में माँ भवतारिणी को उद्देश्य कर प्रणाम करते। इसके बाद माँ और स्वामीजी को प्रणाम कर अपने कमरे में लौट आते। इन सब महान साधुओं का आत्मत्याग, वैराग्यमय और पवित्र जीवन, आदर्श के प्रति अनुराग और प्रेम ने ही रामकृष्ण संघ को उज्ज्वल करके रखा है। **(क्रमशः)**

समय को पहचानो

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

नवीन आश्रम के एक ब्रह्मचारी से वार्तालाप कर रहा था।

नवीन ने उनसे पूछा – मैं अपने बुरे संस्कार कैसे दूर करूँ?

ब्रह्मचारी - तुम्हारे आदर्श कौन है?

नवीन - स्वामी विवेकानन्द जी।

ब्रह्मचारी - क्या तुम प्रतिदिन अपने आदर्श के उपदेशों को पढ़ते हो?

नवीन - नहीं, आजकल अत्यधिक प्रतिस्पर्धा है। अत: मैं परीक्षा के पश्चात् छुट्टियों में कुछ दिन पढ़ लेता हूँ।

ब्रह्मचारी - अपने आदर्श के उपदेशों को कुछ दिन की छुट्टी में पढ़ोगे और शीघ्र ही भूल जाओगे, तब तुम अपने संस्कार कैसे बदल सकोगे?

नवीन - तब उपाय क्या है? मैं महाविद्यालय की पढ़ाई में भी व्यस्त रहता हूँ।

ब्रह्मचारी - तुम रात में कितने बजे सोते हो?

नवीन - दस बजे।

ब्रह्मचारी - यदि तुम दस बजकर पाँच मिनट में सो जाओ, तो क्या तुम्हें कोई समस्या होगी?

नवीन - नहीं।

ब्रह्मचारी - तो अब प्रतिदिन सोने से पूर्व मात्र पाँच मिनट अपने आदर्श स्वामी विवेकानन्द जी के उपदेशों को पढ़कर सोना। देखोगे धीरे-धीरे संस्कार परिवर्तित होंगे।

नवीन ने वैसा ही किया। यह उपाय बहुत सरल भी था। वह प्रतिदिन पाँच मिनट में दो पृष्ठ पढ़ लिया करता था। इस प्रकार एक महीने में उसने साठ पृष्ठ की एक पूरी पुस्तक पढ़ डाली। वह स्वयं आश्चर्यचकित था। उसने पहली बार कोई पुस्तक पूरी पढ़ी थी। अब वह समय के महत्त्व को समझ चुका था। यदि नियमित रूप से मात्र पाँच मिनट पढ़कर एक पुस्तक पढ़ी जा सकती है, तो नियमित रूप से समय प्रबंधन करके और भी कई कार्य किए जा सकते हैं। नवीन को समय के सदुपयोग की जैसे कुंजी मिल गई। आइए इसी 'समय' के संदर्भ में हम कुछ विश्लेषण करें।

समय का सदुपयोग – अधिकांश लोग यही कहते हैं कि वे कुछ अच्छा करना तो चाहते हैं, पर उन्हें समय नहीं मिलता। वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो उसी स्थान पर बेहतर कार्य करते हैं। यदि हम इन दोनों प्रकार के लोगों में अन्तर देखें, तो पायेंगे कि सफल लोग सदा समय का सदुपयोग करते हैं। हमें प्रत्येक दिन मात्र २४ घंटे ही मिलनेवाले हैं और जो समय चला जायेगा, वह कभी भी वापस नहीं आयेगा। अत: हमें इसके सदुपयोग पर अधिक सजग रहना चाहिए। यदि हमें प्रत्येक दिन के २४ घंटे में से समय निकालना हो, तो हमें समय के अपव्यय को रोकना होगा। इसके लिये सर्वप्रथम हमें अपनी वर्तमान दिनचर्या को लिख लेना चाहिए। फिर उसमें हो रहे, अनावश्यक कार्यों को बंद करके उसके स्थान पर अपने अनिवार्य कार्यों को करना चाहिए। कुछ लोग खेल-कूद और व्यायाम को अनावश्यक समझते हैं, परन्तु यह स्वास्थ्य हेतु अत्यावश्यक है। स्वास्थ्य अच्छा रहने से हमारे कार्य की क्षमता बढ़ जाती है। अत: अपनी दिनचर्या में इसके लिए उचित समय देना चाहिए।

दिनचर्या – हमें अपने पूरे दिन की एक दिनचर्या बना लेनी चाहिए। सुबह उठकर हम यह सोचते रहें कि अब क्या करना है, इससे बेहतर है कि हम सोने से पूर्व ही अपने अगले दिन का एक योजनाबद्ध कार्यक्रम बना लें और सुबह उठकर उसमें लग जायें। अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों को दिनचर्या में प्राथमिकता दें, जैसे – अध्ययन, अभ्यास आदि। जिन कार्यों में समय का अपव्यय अधिक हो, उन्हें दिन के अन्त में ही स्थान दें, जैसे सोशल मीडिया आदि। अपनी दिनचर्या में सुबह उठने से लेकर विश्राम तक का समय निर्धारित कर लेना चाहिए और यह अपनी सुविधानुसार ही बनाना चाहिए। जैसे कोई सुबह सात बजे उठने का अभ्यस्त है और वह अपनी दिनचर्या में अचानक पाँच बजे उठकर पढ़ने का प्रयास करे, तो वह प्रारम्भ में ही कठिन होगा। वहीं परिवर्तनों को भी धीरे-धीरे करना सरल होगा। इसी प्रकार बीच-बीच में थोड़ा अवकाश भी लें, अन्यथा एक ही कार्य लम्बे समय तक करने पर वह उबाऊ भी हो सकता है। जैसे प्रत्येक घंटे पढ़ाई के बाद थोड़ा टहल लें,

शरबत पी लें आदि।

समय निर्धारण – लक्ष्य तक पहुँचने का समय निर्धारित करना आवश्यक है। क्योंकि जब लक्ष्य को पाने का समय निर्धारित हो जाता है, तब उस लक्ष्य के प्रति हमारी सजगता बढ़ जाती है। जैसे-जैसे लक्ष्यप्राप्ति का समय हमारे निकट आता है, वैसे-वैसे हमारी एकाग्रता भी बढ़ती जाती है। जिन प्रलोभनों में हम लिप्त हो जाते हैं अथवा जिस समय के अपव्यय को हम दूर नहीं कर पाते, वे सब समय निर्धारित करने से दूर हो जाते हैं। परीक्षा की घड़ी आते ही समय का दुरुपयोग स्वाभाविक रूप से चला जाता है। अत: हमें अपने-अपने लक्ष्यों या कार्यों को समय से निर्धारित कर लेना चाहिए। जैसे किसी विद्यार्थी के पाठ्यक्रम में विभिन्न विषय हैं। वह उसे सात महिने में समाप्त करना चाहता है तथा अगले एक महिने में वह उन विषयों का अभ्यास करना चाहता है। तब उसे उन विषयों के कुल अध्यायों को कुल सात महिनों में विभाजित कर लेना चाहिए। उदाहरणत:

समय देते हैं और यदि वह सन्तुष्ट न कर सका, तो उसे छात्रवृत्ति से हाथ धोना पड़ेगा। अगले ही दिन कुछ घंटे विश्राम के पश्चात् कुछ खाकर उसने अपना कार्य आरम्भ किया और तीन दिन तक तल्लीन होकर कार्य करते रहा। तीसरे दिन अध्यापक उसके कार्य को पीछे से निहार रहे थे। अध्यापक ने प्रसन्नतापूर्वक उससे कहा – मुझे आशा नहीं थी कि तुम इतना अच्छा कर पाओगे। इस प्रकार उसे छात्रवृत्ति तो मिली ही साथ ही साथ उसने इंजीनियरिंग की परीक्षा भी अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। समय सीमा ने उसकी प्रतिभा को सामने रख दिया था। वह छात्र और कोई नहीं – भारतरत्न डॉ.ए.पी.जे.अब्दुल कलाम थे।

सिंहावलोकन – नवीन दसवीं की परीक्षा दे रहा था। वह बहुत क्रिकेट प्रेमी भी था। परीक्षा के समय में ही इडन गार्डन में विश्व-कप का खेल चल रहा था। नवीन थोड़ी देर पढ़ाई करता और बीच-बीच में टी.वी. में स्कोर देखने चला जाता। खेल रोमांचक हो चुका था।

समय-सारिणी

विषय	कुल अध्याय	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी
गणित	१४	२	४	६	८	१०	१२	१४	पुन:पठन
भूगोल	२१	३	६	९	१२	१५	१८	२१	
विज्ञान	१८	३	६	९	११	१४	१६	१८	

समय-सारिणी सरल ढंग से, कम समय में अधिक कार्य करने का सूत्र है।

एक छात्र मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) की पढ़ाई कर रहा था। उसे छात्रवृत्ति मिलती थी। आकाश में उड़ने का उसका बचपन का सपना था। उसका यह सपना अत्यन्त निकट आ गया, जब वह एम.आई.टी. में आ गया। इंजीनियरिंग की परीक्षा के अन्त में उसे एक विमान की रूप-रेखा बनाने की परियोजना में कार्य करना था। वह अपने सहपाठियों के साथ कार्य विभाजन करके यह कार्य कर रहा था। तभी एक दिन उसके अध्यापक ने उससे कहा कि वे उसके कार्य से सन्तुष्ट नहीं हैं। तब छात्र ने अपने अध्यापक से एक महिने का समय माँगा। पर अध्यापक ने कहा कि वे उसे मात्र तीन दिन का

ऐसे समय में नवीन का मन खेल की ओर अधिक हो गया। कुछ समय बाद ही दर्शकों ने मैदान में बोतलें फेंकना आरम्भ कर दिया। इसके चलते खेल बंद हो गया। खिलाड़ी दर्शकों से अनुरोध करने लगे कि दर्शक धैर्य रखें। यह सब देखकर नवीन का पूरा मन खेल की ओर चला गया। उस दिन वह कुछ न पढ़ सका। अगले दिन गणित की परीक्षा थी। परन्तु पढ़ाई न कर सकने के कारण वह कुछ अच्छा न कर सका। परीक्षा के पश्चात् उसने अवलोकन किया कि उसने अपने समय का दुरुपयोग किया है। खिलाड़ियों ने तो अपना कर्तव्य पूरा किया, पर उसने न पढ़कर अपना कर्तव्य पूरा नहीं किया। अब वह कभी इस प्रकार समय का अपव्यय नहीं करेगा। हमलोग कई बार समय का दुरुपयोग करते हैं, पर उसका अवलोकन नहीं करते और वह त्रुटियाँ बारंबार होती रहती हैं, समय भी हाथ से चला जाता है।

अत: हमें बीच-बीच में अपने कार्यों और समय-सारिणी का अवलोकन करके देखना चाहिए कि हमने कब-कब और कहाँ-कहाँ भूलें की हैं तथा उनका समाधान क्या है। इस प्रकार हम अपनी दिनचर्या को और भी बेहतर बना सकते हैं।

सकारात्मकता – कभी-कभी हम कोई कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ही नकारात्मक हो जाते हैं कि मुझसे यह नहीं हो सकेगा। किसी बृहद् पुस्तक को पढ़ने के पूर्व ही मन में यह नकारात्मक विचार करना कि यह मुझसे समाप्त नहीं होगा आदि। हमने पहले ही देख लिया है कि मात्र पाँच मिनट नियमित पढ़ने से ही बड़ी-बड़ी पुस्तकें समाप्त हो जाती हैं, अत: हमें समय-प्रबन्धन पद्धति पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए।

जब हम अपनी बनाई हुई दिनचर्या का पालन नहीं कर पाते, तब हमारे मन में नकारात्मक विचार उठने लगते हैं – 'यह मुझसे नहीं होगा। मैं अपनी बनाई हुई दिनचर्या का पालन नहीं कर सका', ऐसा सोच-सोचकर हम अपना वर्तमान समय भी नष्ट कर बैठते हैं। कहते हैं 'जब जागे तभी सबेरा'। अत: हमने कितना भी समय नष्ट क्यों न कर दिया हो, पर जब भी हमें यह भान हो जाये, उसी समय हमें अपने अगले निर्धारित कार्य में संलग्न हो जाना चाहिए। श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज जब कभी दीक्षा देने हेतु किसी आश्रम में जाते, तब सेवक से पूछते थे कि अभी कितना समय हुआ है और इस समय उनकी दिनचर्या क्या होती है। उस समय उनका जो निर्दिष्ट कार्य होता था, उसमें वे संलग्न हो जाते थे। इस प्रकार 'वे अब क्या करेंगे' ऐसी समस्या कभी नहीं होती थी। वे इतने समयनिष्ठ थे कि लोग कहा करते थे कि उन्हें देखकर अपनी घड़ी ठीक की जा सकती थी।

इच्छा-शक्ति का प्रयोग – हममें से अधिकांश लोग अपने समय का सदुपयोग करना चाहते हैं, पर कर नहीं पाते। इसका मुख्य कारण होता है – अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग न करना। हमने लक्ष्य बनाया, माध्यम निर्धारित किया, समय भी सुनिश्चित किया, पर इसके साथ ही उस समय में उसे पूर्ण करने की पर्याप्त इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना भी अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा समय हाथों से निकल जायेगा और हम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। जिसकी इच्छा-शक्ति जितनी प्रबल होगी, वह उतनी ही निर्धारित समय का पालन कर पायेगा और अपने निर्धारित कार्य को सम्पन्न कर सकेगा। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – 'बिना विघ्न-बाधाओं के क्या कभी महान कार्य हो सकता है? समय, धैर्य तथा अदम्य इच्छा-शक्ति से ही कार्य हुआ करता है।'[१]

बहुउद्देशीय न होना – वर्तमान समय में एक ही समय में विभिन्न कार्यों को करने का चलन हो गया है। आजकल लोग खाने के समय एक ओर चैनल बदल-बदलकर टी.वी. देखते हैं, अखबार भी पढ़ते हैं, फोन भी करते हैं और परिजनों से बातें भी करते हैं। इस प्रकार वे अपने मन को विभिन्न कार्यों में विभक्त करके अपने मन को चंचल बना लेते हैं। उनकी शक्तियाँ विभक्त हो जाती हैं। इस प्रकार वे शान्ति तो पाते ही नहीं, वरन् समय का अपव्यय भी करते हैं। एक समय में एक कार्य करने से एकाग्रता बढ़ती है, वह कार्य कुशलता से सम्पन्न होता है और मन को भी शान्ति मिलती है। जिस समय जिस कार्य को किया जाता है, उसे श्रेयष्कर ढंग से करने का अभ्यास करना चाहिए। उससे उत्तम परिणाम आते हैं। उदाहरण हेतु, कोई व्यक्ति खाते हुए टी.वी. देख रहा है। अब खाने के बाद उससे पूछा जाये कि उसने क्या-क्या खाया और किसका स्वाद कैसा था, तब उसके लिए यह कठिन प्रश्न हो सकता है, क्योंकि उसका मन उस समय टी.वी. के कार्यक्रम में इतना मग्न था कि उसे इसका भान ही नहीं रहा। इस प्रकार के भोजन ग्रहण करने से हम अपने अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना भी कैसे कर सकते हैं। अच्छे स्वास्थ्य हेतु तो हमें प्रसन्न मन से भोजन करना चाहिए। इस प्रकार हमने समय तो पूरा व्यय किया, परन्तु उस समय का पूरा लाभ न ले सके। इस परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द जी महाराज कहते हैं, 'जब तुम कोई कर्म करो, तब अन्य किसी बात का विचार ही मत करो। उसे एक उपासना के, बड़ी से बड़ी उपासना के रूप में करो, और उस समय उसमें अपना सारा तन-मन लगा दो।[२]

योगः कर्मसु कौशलम् – एक संन्यासी सदैव सामान्य से थोड़ी तीव्र गति से चला करते थे। यह देखकर एक दिन एक ब्रह्मचारी ने इसका कारण पूछा। तब उन्होंने कहा – यदि आप सामान्य गति से चलें, तो मार्ग में कई लोग मिल जाते हैं और उनसे अनावश्यक बातचीत करते हुए बहुत-सा समय व्यर्थ ही चला जाता है। पर जब आप थोड़ी तीव्र गति से चलते हैं, तो जिन्हें आप से कार्य होगा, वे ही आपके पीछे आयेंगे। इस प्रकार हम अनावश्यक संगति से बचकर अपने

समय का सदुपयोग कर सकते हैं।

हमारे समक्ष ऐसी कई परिस्थितियाँ आती हैं, जब हम औपचारिकता के कारण मना नहीं कर पाते। पर हमें बुद्धिमत्तापूर्वक अनावश्यक चीजों से बचना चाहिए। जैसे आपके मित्र छुट्टी के दिन सिनेमा जाना चाहते हैं, परन्तु उस दिन आप अच्छे से पढ़ना चाहते हैं। तब ऐसी स्थिति में मना करना आवश्यक होता है। यदि उस समय न कह सकें, तो बाद में घर जाकर, स्थिति देखकर बताऊँगा आदि कहकर ऐसी स्थितियों से बचना चाहिए।

कुछ लोग फोन पर लम्बी-लम्बी अनावश्यक बातें करने के अभ्यस्त होते हैं। ऐसे लोगों का फोन उठाते ही सर्वप्रथम अपनी व्यस्तता बता दें, जिससे आपका अधिक समय नष्ट न हो जाये।

यदि विद्यार्थी दो अंक के प्रश्न को हल करने में आधा घंटा लगा दे, तो वह बाकी के प्रश्नों के लिए अधिक समय नहीं दे सकेगा। इसी प्रकार कोई कार्य जो महत्त्वपूर्ण न हो, पर उस पर हम अधिक उलझ जायें, तो यह बुद्धिमत्ता नहीं होगी, क्योंकि तब हम अपने मुख्य लक्ष्य के लिए पर्याप्त समय नहीं दे सकेंगे। इस प्रकार हमें कुछ व्यावहारिक तरीकों से अपने समय को बचाना तथा उसका सदुपयोग करना होगा।

अच्छी आदतें – हमें अपने जीवन में कुछ अच्छी आदतें डालनी चाहिए, जैसे पुस्तकें पढ़ना, सत्संग करना, सेवा-कार्य करना, जप आदि करना। ये अच्छी आदतें हमारे जीवन के कठिन समय में हमारी सहायक होती हैं। अच्छी आदतों में सत्संग की भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अच्छी संगति में व्यक्ति सदैव अच्छे कर्म करता है। हमें ऐसे सहपाठियों या सहकर्मियों से भी दूर रहना चाहिए, जिनके साथ रहने से समय का अपव्यय होता है।

श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज कहा करते थे कि सदैव जप करने का अभ्यास करना चाहिए, ऐसा करते-करते व्यक्ति जपसिद्ध हो जाता है। किसी के यह पूछने पर कि सदैव जप करना सम्भव नहीं होता है, तब उन्होंने कहा था कि जब भी खाली समय मिले, तब जप करने का प्रयास करना चाहिए। श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज यात्रा के समय पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे रसोईघर में भोजन पकाते हुए भी पुस्तकें पढ़ा करते थे।

जिस प्रकार अच्छी आदतों का अभ्यास आवश्यक है, उसी प्रकार बुरी आदतों का परित्याग भी उतना ही लाभकारी है। जैसे किसी को ताश खेलने का शौक है। यदि वह उस आदत को छोड़ देता है, तो वह अपना बहुत-सा समय बचा सकता है।

उपसंहार – समय से पार जाने की इच्छा हो, तो पहले समय के साथ ताल मिलाकर चलना होगा। अत: सर्वप्रथम हमें अपनी नियमित दिनचर्या बनाकर उसका यथासम्भव पालन करना चाहिए। यदि कभी दिनचर्या टूट भी जाती हो, तो उसके लिए चिंतित न होकर उसे यथाशीघ्र पुन: पकड़ने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि चिंता कोई समाधान नहीं है। लक्ष्य का स्मरण हमें समय के प्रयोग के प्रति सजग बनाता है। हमें अपने लक्ष्यप्राप्ति के लिए समयावधि निश्चित कर लेनी चाहिए और उसे समय से पूर्व ही पूर्ण करने का प्रयास करना चाहिए। तुलसीदास जी लिखते हैं –

का बरषा सब कृषी सुखानें।
समय चुकें पुनि का पछितानें।।[३]

अर्थात् सारी खेती सूख जाने पर वर्षा किस काम की? समय बीत जाने पर फिर पछताने से क्या लाभ?

समय उन्हें ही याद रखता है, जिन्होंने अपने समय का सदुपयोग किया हो। भविष्य की सफलता का रहस्य तो वर्तमान की लेखनी में छिपी होती है। अत: हमें अपने वर्तमान समय का सदुपयोग करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द जी हमें आह्वान करते हुए कह रहे हैं – 'हे वीर, अपना आत्मविकास कीजिए! जीवन क्या निद्रा में ही व्यतीत होगा? समय तो बीतता जा रहा है।[४]

सन्दर्भ : १. विवेकानन्द साहित्य (४/३३९) २. वि.सा. (३/४५) ३. रामचरित मानस/बालकाण्ड २६०/३ ४. वि.सा. ६/३८५ ○○○

जब भगवान ने तुम्हें संसार में रखा है तो तुम क्या कर सकते हो? सब कुछ उन्हीं के ऊपर छोड़ दो। उनके चरणों में अपने को समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर कोई कष्ट नहीं रह जाएगा। तब तुम देखोगे भगवान ही सबकुछ कर रहे है। सब कुछ राम की ही इच्छा पर निर्भर करता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

सबके देव : गुरु नानक देव

अजय कुमार पाण्डेय

अनु.सचिव, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ

माँ तृप्ता और पिता कालू खत्री की पहली सन्तान नानी के घर पैदा हुयी तो नानकी कहलायी। नानकी का भाई हुआ तो नाम नानक पड़ा। नानक बचपन से ही अलौकिक थे। पाँच वर्ष की आयु में ही रहस्य पूर्ण बातें करने लगे। सात वर्ष की आयु में पढ़ने के लिए पांधा (उपाध्याय) के पास भेजा गया, तो बालक नानक ने ३५ अक्षरों के वर्णमाला की आध्यात्मिक व्याख्या कर दी। शिष्य ही गुरु बन गया। पांधाजी को जितना पढ़ाना था, अल्पकाल में ही बालक नानक ने सीख लिया। कुछ दिनों के बाद नानक ने पाठशाला जाना बंद कर दिया और वे एकान्त में ध्यान करने लगे। परेशान पिता ने नानकजी को संस्कृत पढ़ने के लिए पंडित ब्रजनाथ के पास भेजा। थोड़े ही समय में जितना सीखना था, सीखकर फिर एकान्त चिन्तन का क्रम शुरु हुआ। इसके साथ-ही-साथ अतिरिक्त समय में बालक नानक का समय साधु-संतों के साथ बीतने लगा। सांसारिक पिता पुत्र के हाव-भाव से परेशान रहने लगे। तलवण्डी (गुरु नानक देव का जन्म स्थान) के जमींदार राय बुलार ने कालू मेहता को सलाह दी कि आपका पुत्र विलक्षण प्रतिभा का धनी है। उसे फारसी पढ़ाइये। मैं उसे अपने कार्यालय में रख लूँगा। पिता ने राय मान ली। नानक ने अपनी आवश्यकतानुसार थोड़े ही समय में मुल्लाजी से फारसी भी सीख ली। इस प्रकार अभी तक जिन तीन गुरुओं के पास बालक नानक गये, उन गुरुओं ने ही नानक की विलक्षण प्रतिभा को देखकर उनको गुरु रूप में स्वीकार कर लिया। कहा जा सकता है कि ये जन्मजात गुरु थे।

किन्तु इस असाधारण बालक को पिता समझ नहीं पाये। उन्होंने अपने पुत्र के अध्ययन विषयक उदासीनता से परेशान होकर उसे भैंस चराने का काम सौंपा। एक दिन किसी किसान की फसल भैंस चर गयी। क्रोधित किसान तलवण्डी के जमींदार राय बुलार के पास पहुँचा। जमींदार ने नष्ट हुई फसल की क्षतिपूर्ति देने का आदेश सुनाया।

पिता की विवशता देखकर बालक नानक ने जमींदार से अनुरोध किया कि निर्णय देने के पहले नष्ट हुई फसल को एक बार देख लिया जाय। जमींदार राय बुलार ने अपने आदमियों को फसल देखने के लिए खेत में भेजा। किन्तु आश्चर्य की बात है कि वहाँ लहलहाती हुई फसल दिखायी दी। सभी अचम्भित थे। राय बुलार नानक के समक्ष नतमस्तक हो गए। उनको कहना पड़ा, 'यह साधारण बालक नहीं पहुँचा हुआ सन्त है।''

सन्तों की संगति में मग्न बालक नानक के चिन्तातुर माता-पिता ने फिर से नानक को खेती, वाणिज्य और सौदागरी करने के लिए मौका दिया, किन्तु सांसारिक क्षेत्र में नानक असफल रहे। ठीक इसके विपरीत आध्यात्मिक क्षेत्र में, भगवान के चिन्तन-मनन में वे निरन्तर, उत्तरोत्तर आगे बढ़ते गये। उनके इस प्रकार की सांसारिक उदासीनता से उनके माता-पिता दुखी रहने लगे।

नानक की बहन नानकी की शादी जयरामजी से हुई थी, जो सुल्तानपुर के नवाब दौलत खाँ लोधी की अदालत में दीवान थे। जयरामजी को यह सूचना मिली कि उनके सास-ससुर नानक की सांसारिक जीवन की उदासीनता से बहुत दुखी हैं। उन्होंने नानक को अपने पास बुला लिया। नवाब दौलत खाँ ने उन्हें अपने भण्डार का प्रधान बना दिया। नानकजी अपने दायित्वों का निर्वाह बड़ी निष्ठापूर्वक करते थे। अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण वे नवाब के विश्वासपात्र बन गए और आम जनता में लोकप्रिय होने लगे। सांसारिक कार्यों को करते हुए भी उनका पल-पल कर्तापुरुष परमात्मा को समर्पित था। उनकी ऐसी मनोदशा हो गई थी कि खाद्यान्न तौलते-तौलते जब तेरह की गिनती तक आते तो 'तेरा-तेरा' कहते हुए समाधिस्थ हो जाते। वे अभावग्रस्तों को तौल से अधिक सामग्री दे देते। अधिक तौल की भरपाई उन्हें अपने वेतन की रकम से करनी पड़ती थी। नानकजी की लोकप्रियता बढ़ती गयी। ईर्ष्यालु चिढ़ते गये। नवाब के कान भी भरे जाने लगे, किन्तु निर्विकार नानकजी अपने मार्ग पर उत्तरोत्तर बढ़ते गये। एक दिन वे प्रतिदिन की भाँति बेई नदी में स्नान करने गये, लेकिन वापस नहीं आये। उनकी बहुत खोज हुई, लेकिन निराशा ही मिली। वे तीन दिन बाद स्वयं अवतरित हुए और नानक से गुरु नानक बन गये, बाना नानक हो गये, पीड़ितों और गरीबों के देव हो गये यानी नानक देव हो गये। तब सुल्तानपुर की धरती धन्य हो गयी और धन्य हो गया बहन-भाई का पवित्र बन्धन।

नानक का उन्नीस वर्ष की उम्र में बटाला निवासी बाबा मूला की कन्या सुलक्खनी देवी से विवाह हो चुका था। बाबा श्रीचन्द और बाबा लक्ष्मीदास दो पुत्र भी थे। लगभग दस वर्षों तक गृहस्थाश्रम का आदर्श स्वरूप भी नानक देव ने समाज के सामने प्रस्तुत किया। किन्तु अहर्निश मानवता की दर्द-भरी चीख उनके कानों में गूँजती रहती थी। अन्तत: बूढ़े माता-पिता, पत्नी-बच्चे एवं बहन-बहनोई को समझाते हुए कि सारा संसार मेरा घर है, वे व्यापक यात्रा पर अपने साथी मरदाना के साथ निकल पड़े, व्यष्टि से समष्टि की ओर चल पड़े, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव को चरितार्थ करने निकल पड़े।

मानवता के पुजारी गुरु नानक देव का उद्‌घोष था ''न मैं हिन्दू हूँ, न मुसलमान''। बहुभाषी गुरु नानक के विचार युग-विशेष अथवा काल-विशेष तक सीमित नहीं रहे। वे सर्वकालीन हैं। वे सारे जगत के थे। सारा जगत उनका था। वे सच्चे गृहस्थ थे और सच्चे अर्थों में वे योगी थे, तपस्वी थे, त्याग की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने भाई लहड़ा को अपना उत्तराधिकारी बनाया, जबकि उनके अपने दो पुत्र थे। आध्यात्मिक ऊँचाई प्राप्त करने के बाद कर्तारपुर में ६० वर्ष की अवस्था में खेतों में हल चलाकर श्रम की महत्ता का संदेश दुनिया को देनेवाले धर्म गुरु नानक देव ही थे। हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे रहना उनकी दृष्टि में अपराध था। एक अनासक्त संन्यासी महान कर्मयोगी भी हो सकता है, वे इसके दृष्टान्तस्वरूप थे। नानकदेव के लिए कोई भी कार्य सांसारिक नहीं था, वरन् सभी कार्य पूजा और उपासना थे। वे कवि थे, देशभक्त थे, गुरु थे, संगीतज्ञ थे, समाज-सुधारक थे, सब कुछ थे, जो एक मानवता के पुजारी को होना चाहिए। मानवता के उच्च विचारों के प्रचार-प्रसार के लिये ही उन्होंने मक्का, मदीना, फ्रांस, मिस्र, नेपाल, भूटान, तिब्बत, चीन एवं श्रीलंका आदि की यात्राएँ कीं। वे जहाँ भी गये, वहीं उन्होंने अपने त्याग-तपोमय महान जीवन का प्रभाव छोड़ा। उनके चरित्र से प्रभावित होकर ही ठग शेख, सज्जन उदार बन गया। अहंकारी मलिक भागो, विनम्र बन गया। तलवण्डी हो या सुल्तानपुर लोधी, वहाँ के नवाब उनके शिष्यवत् हो गए। सिकन्दर लोदी और मुगल सम्राट बाबर के विचारों में परिवर्तन आया। जादूगरनी नूरशाह (कामरूप) के ऊपर नानकदेव का ही जादू चला।

गुरु नानक देव के जीवन की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसका उल्लेख यहाँ प्रासंगिक है। उनके जीवन की यह घटना सिद्ध करती है कि गरीबों के रक्त-शोषण कर अर्जित धन पवित्र और मंगलकारी नहीं होता, जितना परिश्रम से किया हुआ धन पवित्र और मंगलमय होता है। क्योंकि पवित्र अन्न से ही तो पवित्र विचार आते हैं और पवित्र विचार से सत्कर्म करने की प्रेरणा मिलती है।

गुरु नानक देव सुल्तानपुर से यात्रा करते हुए सय्यदपुर पहुँचे। जब वे बाजार से जा रहे थे, तो वहाँ उन्होंने लालो नामक एक बढ़ई को देखा, जो लकड़ी की छोटी-मोटी वस्तुएँ बनाकर अपनी जीविका चलाता था। लालो ने गुरु नानक देव को अपने घर निमन्त्रित किया। लालो ने परिश्रम के अर्जित धन से नानकदेव और मरदाना दोनों की निष्ठापूर्वक सेवा की। उसके भोजन, सेवा और श्रद्धा से नानकदेव बहुत प्रसन्न हुए। सय्यदपुर के ही एक नगर सेठ ने पुण्य कमाने हेतु शहर के साधु-सन्तों, भिखारियों और गरीबों को भोजन कराया। सेठ ने नानकदेव को निमन्त्रित किया, पर वे वहाँ नहीं गए। सेठ मलिक भागो को अपमान बोध हुआ। उसने जाकर नानकदेव से तिरस्कारपूर्वक कहा, नीच लालो की नीरस रोटियाँ खाते हो, यदि हमारे यहाँ आते तो स्वादिष्ट भोजन मिलता। नानकदेव ने धैर्य से कहा, तुम्हारे भोजन में गरीब जनता का रक्त है, पर लालो की सूखी रोटियाँ परिश्रम की कमाई का दूध है। सेठ उनके चरणों में गिर गया।

इस प्रकार नानकदेव केवल कालू-तृप्ता के पुत्र, नानकी के भाई, सुलक्खनी के पति एवं श्रीचंद तथा लक्ष्मीदास के पिता नहीं थे। वे इससे ऊपर लोकमंगल के विग्रह थे, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रतिमूर्ति थे, सिद्धान्त एवं व्यवहार के समन्वयक थे, निवृत्ति और प्रवृत्ति के आदर्श उदाहरण थे। पीड़ितों की आवाज थे, समाज में व्याप्त कुरीतियों के निवारक थे। सौम्यता, दया और करुणा के सागर थे। तभी तो वे धनी मलिक भागो के नहीं, बढ़ई लालो के थे। वे सांस्कृतिक एकता की संस्थापना के लिए सदैव प्रयासरत थे, क्योंकि सांस्कृतिक एकता का काम कभी शासन और राजनीति के द्वारा नहीं हुआ। यह काम केवल गुरुओं, आचार्यों, सन्त-महात्माओं और अवतार-पुरुषों ने किया है। गुरु नानक देव ने अपने उच्च आध्यात्मिक और सद्भावपूर्ण विचारों से राष्ट्रीय एकता स्थापित की, भारत को एक बनाया, उसे जगद्गुरु का अधिकारी बनाया। इस प्रकार नानकदेव सबके थे। ○○○

स्वामी विवेकानन्द : भारतीय स्वतन्त्रता और समृद्धि के क्रान्तिकारी

स्वामी निखिलात्मानन्द

स्वतन्त्रता दिवस राष्ट्रीय पावन पर्व है। ऐसे समय में स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान ऐसे महान व्यक्तियों की ओर जाता है, जिन्होंने इस देश को स्वाधीन करने में अपने प्राणों का बलिदान किया। एक-से-एक बढ़कर कितने त्यागी स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी आते हैं और इस मातृभूमि को आजाद करने के लिये अपना सर्वस्व लुटा देते हैं। उनके बलिदानों से हजारों वर्षों से पराधीन यह देश १५ अगस्त, १९४७ को आजाद हो जाता है। जब हम इन सर्वस्व त्यागियों के प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं, तो एक नाम ऐसा आता है, जो इन सब से ऊपर है और वह नाम है स्वामी विवेकानन्द जी का।

सबसे पहले जिन्होंने इस देश में आजादी की अलख जगायी, वे थे स्वामीजी। इस देश के प्रति, इस देश के लोगों के प्रति, इस देश की संस्कृति के प्रति तथा इस देश के धर्म के प्रति स्वामी विवेकानन्द जी का प्रेम अद्वितीय था। स्वामीजी की देशभक्ति को देखकर अपने देश को आजाद करने में हजारों नवयुवक अपने प्राणों की बलि दे देते हैं। स्वामीजी कैसे आजादी की अलख को जगाते हैं? जब हम स्वामीजी के जीवन को देखते हैं, तो एक ही व्यक्ति के जीवन में कितने विविध आयाम को पाते हैं। जैसे – एक महान देशभक्त, एक महान समाज सुधारक, एक महान शिक्षाशास्त्री, एक महान संगीतज्ञ। उनका भजन सुनकर श्रीरामकृष्ण कहते थे – जब नरेन्द्र गाता है, तो जो मेरे अन्दर है, वह मानों कुण्डली मारकर सुनता है, अर्थात् उनके गायन को सुनकर श्रीरामकृष्ण कहते कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है। ऐसा अद्भुत गायन था उनका! सर्वोपरि हम देखते हैं कि स्वामीजी एक महान आध्यात्मिक नेता और आध्यात्मिक दिग्गज के रूप में आते हैं! एक ही व्यक्ति में इतने गुणों का समावेश और वह भी चरमोत्कर्ष पर अद्भुत है। उनके जीवन के जिस पक्ष को देखेंगे, सबमें स्वामीजी की सर्वश्रेष्ठता दीखती है। इनके जैसा महान देशभक्त कौन हो सकता है? इन सबकी प्रेरणा का स्रोत आध्यात्मिकता थी। स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में आध्यात्मिकता विभिन्न विधाओं में प्रकट होती है। वे एक ऐसे रत्न की भाँति थे, जिसे हम जिस दिशा से देखें, जिस ओर से देखें मानों एक अद्भुत प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। ऐसे स्वामीजी आकर इस देश को जगा जाते हैं। स्वामीजी जैसा चाहते थे, जैसा उनका सपना था, उस पर हम अभी खरे नहीं उतर पाये हैं। उन्होंने जो चेतावनी दी थी, उसे हम भूलते जा रहे हैं।

स्वामीजी ने कहा था कि भारत अकल्पनीय परिस्थितियों के बीच अगले पचास वर्षों में ही स्वाधीन हो जायेगा। स्वामी विवेकानन्द ने भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिये देशवासियों को जाग्रत किया। उनके अग्निमय विचारों को पढ़कर सुभाषचन्द्र बोस आदि कितने क्रान्तिकारियों ने देश की आजादी के लिये अपना बलिदान किया। भारतवासियों की अशिक्षा और गरीबी को दूर करने एवं उनमें आत्मविश्वास भरने के लिये स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। विदेशों में जाकर उन्हें भारतीय संस्कृति से अवगत कराया और वहाँ से धन लाकर भारत को समृद्ध करने के लिये विभिन्न योजनाएँ आरम्भ कीं। अपने संन्यासी गुरु-भाइयों को जनसेवा में संलग्न किया। स्वामीजी के जीवन की घटनाओं से हम सहज ही समझ सकते हैं।

सर्वप्रथम स्वामीजी कैसे एक तेजस्वी नवयुवक के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। ऐसा नवयुवक जो जानना चाहता है कि इस जीवन का सत्य क्या है? जिस ईश्वर के बारे में इतनी बड़ी-बड़ी बातें कही जाती हैं, वह ईश्वर है क्या? क्या किसी ने उस ईश्वर को देखा है? नवयुवक नरेन्द्रनाथ का सबसे एक ही प्रश्न था किसी ने उस ईश्वर को देखा है? जब वे सुनते थे कि कोई व्यक्ति ऐसा है, जो ईश्वर के बारे में चर्चा करता है, महापुरुष के रूप में, एक आध्यात्मिक नेता के रूप में जिसकी गिनती होती है, तो ऐसे लोगों के पास वे जाते थे और जाकर के विनीत भाव से प्रश्न करते थे कि महाशय क्या आपने ईश्वर को देखा है? क्या आप मुझे भी ईश्वर को दिखा सकते हैं? पर कोई ऐसा व्यक्ति उन्हें मिलता

नहीं था। स्वामीजी तत्कालीन ब्राह्म समाज के आध्यात्मिक नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास गए और उनसे भी वही प्रश्न पूछा – महाशय! क्या आपने ईश्वर को देखा है? देवेन्द्रनाथ ठाकुर से ऐसा प्रश्न किसी ने भी नहीं किया था। वे उनकी ओर आश्चर्य से देखते हुए कहते हैं – वत्स! तुम्हारी आँखें योगियों की आँखों के समान हैं। स्वामीजी को किसी ने सही उत्तर नहीं दिया। ऐसे आध्यात्मिक नेताओं, पंडितों, पुरोहितों की घुमावदार बातें सुनकर ईश्वर पर से उनका विश्वास हटने लगता है, ईश्वर की सत्ता पर उनका संशय होने लगता है। तभी उनके शिक्षक ने उन्हें दक्षिणेश्वर के सन्त श्रीरामकृष्ण परमहंस के बारे में बताया। नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर जाकर श्रीरामकृष्ण से मिलकर वही प्रश्न पूछते हैं, महाशय क्या आपने ईश्वर को देखा है? तुरन्त उनकी आशा के विपरीत उत्तर मिलता है। श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं, 'बेटा! मैंने ईश्वर को देखा है। जैसा मैं तुम्हें देख रहा हूँ, उससे भी स्पष्ट रूप से मैंने ईश्वर के दर्शन किये हैं। अगर तू चाहे तो मैं तुम्हें भी ईश्वर के दर्शन करा दे सकता हूँ।'

नरेन्द्रनाथ सोचते हैं, यह अद्भुत व्यक्ति है, कहता है कि मैंने ईश्वर को देखा है और तुम्हें भी ईश्वर के दर्शन करा सकता हूँ। यह मानों धर्म को विज्ञान के धरातल पर लाकर के रख रहा है, जैसे एक वैज्ञानिक कहता है कि मैंने इसे प्रयोगशाला में सिद्ध किया है। पर यदि एक वैज्ञानिक अगर कहे कि केवल मैं ही इस प्रयोग को कर सकता हूँ, दूसरा कोई व्यक्ति नहीं कर सकता, तो इसे वैज्ञानिक प्रणाली नहीं कहेंगे। वैज्ञानिक प्रणाली तो यह है कि एक वैज्ञानिक उस प्रयोग को सिद्ध कर सके और दूसरा वैज्ञानिक भी उस प्रयोग को सिद्ध करने में समर्थ हो, तो इसे वैज्ञानिक प्रणाली कहेंगे। नरेन्द्र कहता है कि यह व्यक्ति तो धर्म को विज्ञान के समकक्ष लाकर के रख रहा है, जो कहता है कि मैंने ईश्वर को देखा है और तुम चाहो तो मैं तुम्हें भी ईश्वर के दर्शन करा दे सकता हूँ। स्वामीजी उनके चरणों में गिर जाते हैं और श्रीरामकृष्णदेव उन्हें अपना शिष्य स्वीकार करते हैं। उन्हें कुछ अनुभूतियाँ कराते हैं। बाद में स्वामीजी श्रीरामकृष्ण देव के बताये मार्ग पर साधना करते हैं और ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं, निर्विकल्प समाधि के द्वारा ब्रह्म की अनुभूति कर आनन्द मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने जीवन के प्रारम्भ में प्रथम आध्यात्मिक क्रान्ति की थी और जन-मानस की ईश्वर की सत्ता की सत्यता के सम्बन्ध में संशय को दूर किया और सबके लिये ईश्वर-दर्शन के मार्ग को प्रशस्त किया।

एक बार स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण देव से शुकदेव के समान सदा समाधि में डूबे रहने की इच्छा व्यक्त की। श्रीरामकृष्णदेव यह सुनकर प्रसन्न नहीं हुए, उनकी भत्सर्ना करते हुए कहने लगे – तू कैसी ओछी बात करता है! मैंने सोचा था कि तू एक महान वटवृक्ष के समान होगा, जिसकी छाया के नीचे संसार की ज्वाला से दग्ध लाखों लोग आकर के शान्ति पायेंगे, विश्राम पायेंगे। पर तू तो अपने ही स्वार्थ की बात कह रहा है! अरे! समाधि की अवस्था निम्न है। इससे भी ऊँची अवस्था है सर्वभूतों में ब्रह्म दर्शन, दूसरों को सुख, आनन्द देना। दूसरों को उन्नत बनाना। नरेन्द्रनाथ लज्जित हो जाते हैं। परवर्ती काल में पारम्परिक लीक से हटकर समाधि-सुख का त्याग कर देश की सेवा में उनका योगदान दूसरी क्रान्ति थी।

एक बार श्रीरामकृष्ण ने लिखा कि नरेन्द्र शिक्षा देगा। नरेन्द्र ने कहा कि मैं ये सब नहीं कर सकूँगा। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा कि तेरी हड्डियों तक को कार्य करना पड़ेगा। एक दिन श्रीरामकृष्ण अपने शिष्यों के साथ बैठे हुये थे। उसमें नरेन्द्रनाथ भी थे। वैष्णव मत का प्रसंग चला। वैष्णव मत में तीन बातों को प्रधानता दी गयी है। पहली भगवान के नाम में रुचि हो, भगवान के नाम-गुणों का कीर्तन करें, दूसरी बात है कि वैष्णव जनों की सेवा करें और तीसरी बात है जीवों पर दया, जो प्राणी हैं उनके प्रति दया का भाव होना चाहिये। जैसेही श्रीरामकृष्ण ने जीवों के प्रति दया सुना, वे समाधि में चले गए समाधि से जब उनका मन नीचे उतरता है, तब उच्च स्वर में चिल्लाकर कहते हैं जीवों पर दया! अरे! तू कीटाणुकीट है। अरे! तू क्या जीवों पर दया

करेगा? दया नहीं, शिवभाव से जीवसेवा। नरेन्द्रनाथ ने वे बातें सुनी और उसके बाद बाहर आकर अपने गुरुभाईयों से कहते हैं – गुरुदेव ने आज कितनी अद्भुत बात कही! उन्होंने कहा कि हमें दया करने का अधिकार नहीं है। हम जीव को शिव समझते हुये उसकी सेवा कर सकते हैं। गुरुदेव ने इस उपदेश के माध्यम से वेदान्त के सत्य को, वन के वेदान्त को कैसे व्यावहारिक बनाया जाता है, आज बता दिया। आज गुरुदेव ने जो शिक्षा दी है, यदि भगवान ने मुझे सुयोग दिया, तो इस उपदेश का प्रचार मैं सारे संसार में करूँगा। भारतवासी सैकड़ों वर्षों की गुलामी से दीन-हीन हो गये थे। उनकी दीनता-दरिद्रता को समझने और दूर करने के उपाय की खोज में श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के बाद स्वामी विवेकानन्द ने अपनी जननी और जन्मभूमि को छोड़कर भारत-भ्रमण किया। यह तीसरी क्रान्ति थी।

भूखे पेट में धर्म नहीं होता। जो व्यक्ति भूखा है उसके लिये धर्म है रोटी। उसे भोजन कराना ही उसके लिये धर्म है। जो व्यक्ति नंगा है, उसके लिये धर्म है उसे वस्त्र प्रदान करना। स्वामी विवेकानन्द सारे देश का परिभ्रमण करते हैं और देशवासियों की दुर्दशा को देखकर उनका हृदय बहुत व्यथित हो जाता है। वे सोचने लगते हैं कि जो देश कभी जगद्गुरु कहलाता था, आज उसकी कैसी दुर्दशा है! कैसे लाखों लोग भूख से मर रहे हैं! कैसी अशिक्षा है सारे देश में! पुन: कैसे जागेगा यह देश! उन्हें उत्तर मिलता है कि हजारों वर्ष की गुलामी शिक्षा के माध्यम से दूर हो सकती है। इसके लिये वे गुजरात और राजस्थान के राजाओं से मिलते हैं और उन्हें शिक्षा संस्थान खोलने को प्रेरित करते हैं। स्वामीजी को कहीं से आशा की किरण दिखाई नहीं दी। दुखित हृदय से वे भ्रमण कर रहे हैं। देश का भ्रमण करते हुये आबूरोड स्टेशन पर उनकी भेंट अपने ही गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द जी से होती है। स्वामी तुरीयानन्द जी को देखकर वे उनसे लिपटकर रोते हुये कहते हैं – तुम्हारा धर्म किसे कहते हैं, हरि भाई मैं समझ नहीं पाया, मैंने दूसरों के दुख-दर्द का अनुभव करना सीख लिया है। इस देश की जनता के दुख से मेरी छाती फटी जा रही है। बाद में स्वामी तुरीयानन्द जी ने कहा था कि उस समय स्वामीजी के इन शब्दों को सुनकर मुझे ऐसा लगा मानो भगवान बुद्ध की आत्मा उनमें साकार हो गई है। देशवासियों की व्यथा से व्यथित हो स्वामीजी पैदल सारे भारत का भ्रमण करते हुये भारत के अन्तिम छोर कन्याकुमारी में पहुँचते हैं। वहाँ माँ कन्याकुमारी का सुन्दर मन्दिर है, जाकर प्रणाम करते हैं। स्वामीजी मन्दिर से बाहर निकलकर देखते हैं कि वहाँ तीन सागर मिल रहे हैं। समुद्र में कुछ दूर एक टापू जैसा है। वे तैर करके उस चट्टान पर पहुँचते हैं, जहाँ आज एक भव्य विवेकानन्द शिलास्मारक बना हुआ है। वे उस शिला पर बैठकर ध्यान करते हैं। किसका ध्यान करते हैं? वे किसी देवी-देवता का ध्यान नहीं करते, वे भारत माता का ध्यान करते हैं। वे चिन्तन करते हैं कि भारत की इतनी दुरवस्था का क्या कारण है! उन्हें उत्तर मिलता है कि धर्म इस देश की पतनावस्था का कारण नहीं है, अपितु धर्म को जीवन में नहीं उतारना इस देश की पतनावस्था का कारण है।

एक ओर हम कहते हैं, हे प्रभु तुम्हीं कुमार, तुम्हीं कुमारी, तुम्हीं स्त्री, तुम्हीं पुरुष हो। तुम ही वृद्ध हो, जो हाथ में लकड़ी लेकर लड़खड़ाता हुआ जा रहा है। तुम सभी रूपों में विद्यमान हो, ऐसी ऊँची बात हमने कही। दूसरी ओर हमने घृणा से कहा – ऐ चांडाल दूर हट। एक बार स्वामीजी जब केरल प्रान्त में भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने विचित्र दृश्य देखा था। एक व्यक्ति सड़क के बीच में डंडा पटकते हुये जा रहा है और लोग उससे दूर हटते जा रहे हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ स्वामीजी को। उन्होंने दूसरे व्यक्तियों से पूछा कि यह डंडा पटकते हुए क्यों जा रहा है? एक व्यक्ति ने कहा – स्वामीजी यह तो परिया है, डंडा पटक कर बता रहा है यह अछूत है, ताकि सवर्ण जाति के लोग उससे दूर हट जायें। अगर सवर्ण जाति के लोगों पर इसकी छाया कहीं पड़ गयी, तो उन्हें स्नान करना पड़ेगा। स्वामीजी ने उसी समय अपना माथा पीट लिया। स्वामीजी ने देश के पतन के कुछ कारणों को खोजा, जैसे – १. निम्न जाति पर उच्च जाति का अत्याचार। २. स्त्रियों की उपेक्षा। एक ओर तो हम कहते रहे हैं कि नारी साक्षात् देवीस्वरूपा है और दूसरी ओर उस नारी पर कितने बन्धन लगा दिये गये हैं। उन्हें शिक्षा नहीं मिलती। जिन नारियों ने वेद-ऋचाओं का प्रणयन किया, उन नारियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। अगर इन दो कारणों को दूर करने पर विचार किया जाय, तो देश जाग उठेगा। नारी को शिक्षित करना पड़ेगा। उसे स्वावलम्बी बनाना पड़ेगा। निम्न वर्ग को शिक्षा-संस्कार के द्वारा ऊपर उठाना पड़ेगा। भारत में ऐसी सोच को जाग्रत करने के लिये संघर्ष करना यह चौथी क्रान्ति थी।

उपरोक्त दोनों योजनाओं के लिए धन चाहिये। धन कहाँ से मिलेगा? राजा-महाराजाओं के पास भी गए, किन्तु अपेक्षित सहायता की आशा की किरण दिखाई नहीं दी। तुरन्त उनके मन में विचार आता है, ठीक है मैं विदेश जाऊँगा तथा विदेश जाकर इस देश के लिए धन लाऊँगा। उस धन से शिक्षण संस्थाओं का निर्माण करूँगा। देश को उठाने का प्रयास करूँगा।

मद्रास में स्वामीजी के मित्रों ने बताया कि शिकागो में विश्वधर्म सम्मेलन का आयोजन हो रहा है और स्वामीजी आपको वहाँ हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि बनकर अवश्य जाना चाहिये। स्वामीजी भगवान की इच्छा समझकर शिकागो जाने को तैयार हो गए। महाराजा अजीत सिंह स्वामीजी के शिष्य थे। उन्होंने शिकागो जाने में सहायता की। स्वामीजी शिकागो जाते हैं और ११ सितम्बर, १८९३ को शिकागो के धर्म महासभा में हिन्दु धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर एक संन्यासी का विदेश गमन स्वामीजी की यह पाँचवीं क्रान्ति थी।

स्वामी विवेकानन्द धर्मसम्मेलन में पहले ही दिन के पाँच मिनट के व्याख्यान में सारे संसार में प्रसिद्ध हो जाते हैं। ऐसा अद्भुत व्याख्यान, जो गम्भीर था, सभी धर्मों को उच्चता प्रदान करनेवाला था और सभी धर्मों को समन्वित करनेवाला था। स्वामीजी, जिनको अपने ही देश में कोई जानता नहीं था और जिस दिन यह व्याख्यान हुआ, उसी दिन शाम को ऐसे करोड़पति के यहाँ ठहराये गये, जो कक्ष सभी प्रकार की सुविधाओं से सुसज्जित था। किन्तु रात में स्वामीजी को अपने दीन-दुखी भारत की याद आने लगी और फूट-फूटकर रोकर जगन्माता से प्रार्थना करते हुए कहते हैं – माँ! तुमने आज ऐसा वैभव में रखा और मेरे लाखों देशवासी दुख में हैं, उन्हें सर्वदा भोजन तक नहीं मिलता! मैं ऐसी सुविधा का भोग कैसे कर सकता हूँ माँ! स्वामीजी उस खाट पर सोते भी नहीं है। वे जमीन पर लेटकर रात बिताते हैं। सबेरे जब गृहस्वामिनी कमरे में प्रवेश करती हैं, तब स्वामीजी को जमीन पर लेटे हुए देखती हैं। वे पूछती हैं – स्वामीजी क्या मुझसे कोई गलती हो गई, आप इस तरह जमीन पर लेटे हुए हैं। स्वामीजी ने कहा – नहीं! तुमने तो बहुत अच्छी व्यवस्था की मेरे लिये, पर मुझे अपने गरीब भारतवासियों की याद आने लगी, इसलिए तुम्हारी इस सुख-सुविधा का उपभोग नहीं कर सका। ऐसे थे स्वामी विवेकानन्द जी! इस घटना से स्वामीजी की अपने देशवासियो के प्रति असह्य व्यथा व्यक्त होती है। सर्वसमृद्धि में रहकर अपने देशवासियों को न भूलना, उस ऐश्वर्य से आकर्षित न होना, उसका उपभोग नहीं करना और देशवासियों के कल्याण के लिए रात भर रोते हुए माँ से प्रार्थना करना, लोक-ऐश्वर्य एवं कर्तव्यनिष्ठा में संघर्ष की छठवीं क्रान्ति थी।

उस विशाल विश्वधर्म-सम्मेलन में स्वामीजी अपने एक ही दिन के व्याख्यान में सारे संसार में प्रसिद्ध हो गये थे। वही विश्वप्रसिद्ध विवेकानन्द अपने तीसरे और चौथे दिन के व्याख्यान में अपनी हृदय की व्यथा व्यक्त करते हुए कहते हैं – तुम ईसाई लोग मेरे देश में गिरजाघर बनाते हो, किन्तु भूख से मरते हुए मेरे लाखों देशवासियों के लिए क्या किया? वे माँगते हैं रोटी का टुकड़ा, पर तुम उन्हें देते हो पत्थर। भारत को धर्म की आवश्यकता नहीं है, वह वहाँ पर बहुत अधिक है। वहाँ पर आवश्यकता है रोटी की। एक भूख से तड़पते हुये व्यक्ति को धर्म की शिक्षा देना, उसको दर्शनशास्त्र समझाना उसका अपमान करना है। मैं तुम्हारे देश में अपने गरीब देशवासियों हेतु सहायता प्राप्त करने के लिए आया, पर मैं अच्छी तरह जान गया कि एक हिन्दू के लिए ईसाई के देश में सहायता प्राप्त करना कितना कठिन कार्य है।

स्वामीजी ने कहा कि पाश्चात्य देशवासी भी भूखे हैं। उन्हें यथार्थ धर्म की, यथार्थ दर्शन की आवश्यकता है। पादरियों ने बताया था कि तुम पापी हो। इस विचार से वहाँ के शिक्षित समुदाय में शान्ति नहीं थी। स्वामीजी ने उनलोगों से कहा, तुम पापी नहीं हो, मनुष्य को पापी कहना ही सबसे बड़ा पाप है। हिन्दू धर्म किसी को पापी नहीं कहता। तुम तो अमृत की संतान हो। वेद की वाणी का उद्घोष करते हुए कहते हैं – हे अमृतपुत्रो सुनो! मैंने उस सत्य को जान लिया है, जो सूर्य के समान प्रकाशमान है, जिसे जानने से व्यक्ति अमर हो जाता है। मनुष्य के अन्दर भगवान विराजमान हैं। स्वामीजी ऋषियों की इस अमृतवाणी का प्रचार करते हैं। वे हिन्दू धर्म के उन तत्त्वों को सरल सहज शब्दों में अमेरिकावासियों के समक्ष रखते हैं। इनके पहले किसी धर्माचार्य ने हिन्दू धर्म की विशेषता को इस प्रकार प्रतिपादित नहीं की। तत्कालीन परिस्थिति में ईसाइयों के देश में उनके धर्म, दर्शन और कृत्यों पर प्रहार यह सातवीं क्रान्ति थी।

स्वामीजी के जीवन का उद्देश्य क्या है? हिन्दू विचारों

को, वेद-उपनिषदों की कथाओं को, दर्शन और मनोविज्ञान को ऐसे प्रस्तुत करना, जिसे जन-साधारण समझकर अपने जीवन का निर्माण कर सके। ये सारी बातें इस प्रकार हो कि एक बच्चा भी उसे समझने में समर्थ हो और यह करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। स्वामीजी ने ऐसा किया भी। उन्होंने हमारे वेदों के सिद्धान्तों को, वेदों की बातों को सरल शब्दों में रखा है। उसी के फलस्वरूप आज हम शास्त्रों को, गीता को समझने में समर्थ हो पा रहे हैं। अन्यथा कौन था जो ऐसा समझाता। इन्हें समझने के लिये संस्कृत ज्ञान की आवश्यकता थी और जन-साधारण को संस्कृत का ज्ञान इतना नहीं है। वहाँ स्वामीजी हिन्दू धर्म-संस्कृति पर तेजस्वी वाणी में अंग्रेजी में व्याख्यान देते हैं और बहुत सरल शब्दों में वर्णन करते हैं। वे हिन्दू धर्म के तत्त्वों का प्रचार करते हैं। उनकी 'भारतीय व्याख्यान' नामक पुस्तक को पढ़िए, उसमें स्वामीजी को योजनाएँ और ध्येय आदि का स्पष्ट उल्लेख है। प्रत्येक देशभक्त को स्वामीजी को वह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इसमें स्वामीजी का देशप्रेम झलकता है।

देशभक्ति के प्रसंग में स्वामीजी कहते हैं, ऐ मेरे भावी समाजसुधारको! मेरे भावी देशभक्तो, क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देवताओं तथा ऋषियों की करोड़ों सन्तानें अब पशुओं के समान हो गई हैं? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखों लोग आज भूखों मर रहे हैं और लाखों लोग शताब्दियों से इसी प्रकार भूखों मरते आये हैं। क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढँक लिया है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त में प्रवाहित हो रही है? क्या इस विचार ने तुमको पागल बना दिया है? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस जीवन्मृत दुर्दशा के निवारण हेतु तुमने कोई योजना बनाई है? क्या उनके दुखों को कम करने हेतु दो सान्त्वना के शब्द खोजा है? क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लांघकर कार्य करने के लिये तैयार हो? यदि सभी लोग तेरा साथ छोड़ दें, तेरे विरोध में खड़े हो जायँ, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे? इस प्रकार स्वामीजी ने देशभक्ति की परिभाषा दी और भारत की सेवा हेतु देशभक्तों का आह्वान किया।

स्वामीजी के इन्हीं देशभक्तियुक्त अग्निमय विचारों को पढ़कर नवयुवक प्रभावित होते हैं और भारत की स्वतन्त्रता हेतु क्रान्ति कर अपना जीवन समर्पित करते हैं। जब वे फाँसी के तख्ते पर लटकाये जाते थे, तब उनके एक हाथ में गीता और दूसरे हाथ में स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक मिलती थी।

स्वामीजी ने कहा, अगले पचास वर्षों तक अन्य सभी देवी-देवताओं को भूल जाओ और एक मात्र भारत माता ही तुम्हारी आराध्य देवी हों। स्वामीजी के इन्हीं विचारों ने देशवासियों को जगाया था। तभी यह देश जागा और ठीक पचास वर्ष में स्वतन्त्र हो गया। स्वामीजी के विचारों को सुनकर रोमाँ रोला आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उन्होंने स्वामीजी की सुन्दर जीवनी लिखी है। उसमें वे स्वामीजी की वाणी के सम्बन्ध में एक अद्भुत बात लिखते हैं – ''उनके शब्द महान संगीत हैं। बीथोवेन शैली के टुकड़े हैं। हैंडेल के समवेत गान छन्द के छन्द-प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत्-स्पर्श के समान आघात की सिहरन का अनुभव किए बिना मैं उनकी उस वाणी का स्पर्श नहीं कर सकता।''

सचमुच स्वामीजी के विचार इस देश को जगा देते हैं। इस प्रकार हमारा देश आजाद हुआ और आज हम आजाद देश के नागरिक हैं। कैसे स्वामीजी के विचारों ने देश में क्रान्ति ला दी! कैसे आज निम्न वर्ग जाग उठा है! कैसे नारियाँ शिक्षित हो रही हैं और पुरुषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में देश का नाम उज्ज्वल कर रही हैं! जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम नारियों को पाते हैं। मानो स्वामीजी का सपना साकार हो रहा है, फिर भी पूरा नहीं हुआ है। जागृति तो आयी, पर अभी अधूरी है। स्वामीजी जैसा चाहते थे, वैसा अभी हुआ कहाँ है? हम लोग थोड़े जागे, किन्तु जागने के साथ कैसा यह देश भ्रष्टाचार, अनाचार में डूब गया है! स्वामीजी के विचारों का पुन: मंथन करने का यही समय है। स्वामीजी के विचारों को हम अत्मसात् करें। स्वामीजी के अनुसार अपने चरित्र का निर्माण करें। वे कहते थे, त्याग और सेवा ही राष्ट्रीय आदर्श हैं। त्याग और सेवा का आदर्श हमारे जीवन में आना चाहिये। यह देश वीर सपूतों के बलिदानों और त्याग पर आजाद हुआ। इसका हम संरक्षण करें। स्वामीजी ने कहा कि पहले बनो फिर बनाओ। सबसे पहले हम अपने चरित्र का निर्माण करें। अगर हम अपने अन्दर का दीप जलायेंगे, तो उससे हजारों दीप जल उठेंगे। तभी देश सुखी होगा, जनता समृद्ध होगी, क्रान्तिकारियों द्वारा दिया गया बलिदान सार्थक होगा और क्रान्तिकारी विवेकानन्द का सपना साकार होगा। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२०)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

मेरी विचित्र परिस्थिति

इस चातुर्मास्य के दौरान किसी भी परमहंस साधु-संन्यासी के राज्य में आ जाने पर उन्हें सीधा दिया जाता था। मुझे उपस्थित जानकर राज-पुरोहित वहाँ सीधे का बन्दोबस्त करने आये और पूछा, "आपके लिये क्या व्यवस्था होगी?" मैंने उत्तर दिया, "आपके महाराणा के सन्तानों में से यदि कोई भूखा न हो और महाराणा स्वयं आकर मुझसे भिक्षा ग्रहण करने का अनुरोध करें, तो फिर मैं भिक्षा ले सकता हूँ।"

राजपुरोहित ने विस्मय में आकर पूछा, "महाराणा की सन्तान और भूखे?"

मैं बोला, "आपके महाराणा के एक ही वैध पुत्र है और वे खा-पीकर तृप्त रहते हैं। मैं उनकी बात नहीं कह रहा हूँ। सुना है कि महाराणा की अट्ठारह लाख प्रजा है, यदि वे सभी लोग खा-पीकर तृप्त हों, तो समझूँगा कि राणा के सन्तान भूखे नहीं हैं। क्या आप कह सकते हैं कि महाराणा की प्रजा में से किसी को भी अन्न का कष्ट नहीं है?"

यह सुनकर राजपुरोहित बोले, "तो क्या आप कुछ भी नहीं लेंगे।" मेरे असहमति व्यक्त करने पर वे नाराज होकर चले गये।

ये बातें फैल जाने पर उदयपुर हाई स्कूल के प्रधान शिक्षक ने आकर मुझे आगाह किया, "आपने जो बातें कही हैं, वे महाराणा के कानों में पहुँच चुकी हैं। वे आप पर कुपित हैं। यहाँ का कोई भी राज-कर्मचारी या बड़ा आदमी आपके पास आने का साहस नहीं करेगा। इसके अलावा आपको हमाम (अन्धकूप) में डालने की भी बात चल रही है, अत: सावधान रहेंगे।"

मुझे आशंका हुई और मैं सावधान रहा। पूर्वपरिचित (प्रधानमंत्री के) भतीजे का पहले दिया हुआ सीधा दो-चार दिन और चला। राणा के भय से अन्य कोई कुछ भी नहीं दे सकता था।

अन्न-वस्त्र का चरम अभाव था और कहीं बाहर निकलने का भी कोई उपाय नहीं था। ऐसी अवस्था में मैंने जयपुर के हरिसिंह लाड़खानी को पत्र लिखा। उन्होंने कुछ रुपये भेजे। उन्हीं रुपयों से मैंने कपड़े आदि खरीदे और बाकी रुपयों को मन्दिर के ब्रह्मचारी अपने पास रखकर मेरे खाने-पीने की व्यवस्था करने लगे। उन्हीं रुपयों में से मैंने भीलों को महाराणा प्रतापसिंह के सेवक मानकर श्रद्धापूर्वक कई बार भोजन कराया।

नागाओं की शोचनीय अज्ञानता

इसी प्रकार तीन-चार महीने बीत गये। इसी बीच नागा सम्प्रदाय की रीति-नीति को समझने के लिये मैं बीच-बीच में उनकी टोली में जाकर मिल जाता।

नागाओं के महन्त बड़े अच्छे आदमी थे – सामान्य शिक्षा-प्राप्त और खूब निरभिमान थे। वे अन्य साधारण नागाओं तथा अपने बीच कोई भेद नहीं रखते थे। वे बोले, "यदि हमारे सम्प्रदाय के परमहंस लोग हमें भलीभाँति शिक्षा देते, तो हम लोगों के द्वारा बहुत-से अच्छे कार्य हो सकते थे।"

इसी प्रकार बातें हो रही थीं, तभी एक नागा ने आकर मुझसे प्रश्न किया, "महाराज, लंका में इस समय कौन राजा है?" मैंने उत्तर दिया, "क्यों, अंग्रेज लोग।" नागा आँखें लाल करके बोला, 'कदापि नहीं।" मैंने विस्मित होकर कहा, "क्यों नहीं हो सकता? यदि अंग्रेज रामचन्द्रजी के राज्य पर शासन कर सकते हैं, तो रावण की लंका पर उसी प्रकार शासन करने में आश्चर्य की क्या बात?" नागा दृढ़ स्वर में बोला, "कभी नहीं। वह विभीषण का राज्य है।" साथ ही वह बोला, "तुम्हारा ईसाई मत हम बिल्कुल भी नहीं सुनना चाहते।"

मैं सोच रहा था कि नागाओं को समझाऊँगा, परन्तु

पूर्वोक्त महन्त ने मुझे अकेले में बुलाकर कहा, "ये लोग महामूर्ख हैं, आपकी बात नहीं समझेंगे। हो सकता है अपमान भी कर दें। आप अपने सम्मान के साथ यहाँ से विदा हो जायँ।"

मैंने सोचा कि महाराणा नाराज हैं और उसके ऊपर नागाओं की टोली भी चिढ़ी हुई है। अब अपना मान-सम्मान लेकर खिसक जाना ही उचित होगा।

दीन-दरिद्रों के लिये आत्मत्याग के विषय में स्वामीजी का उत्साहपूर्ण पत्र पाने के बाद से मैं सर्वदा मन-ही-मन सोचता रहता था कि क्या स्वामीजी ने केवल मुझ अकेले को ही इस कार्य में नियुक्त किया है? मेरे अन्य गुरुभाई लोग मजे से ध्यान-धारणा तथा ईश्वर-चिन्तन करेंगे और क्या मैं अकेले ही दूसरों के दु:खों का बोझ अपने सिर पर लिये घूमता रहूँगा? यदि वे सभी लोगों को इस कार्य में लगायें, तो फिर बड़ा ही आनन्द आयेगा।

उदयपुर से यात्रा करने के कुछ काल पूर्व ही मुझे (कलकत्ते के) मठ से स्वामी रामकृष्णानन्द का एक पोस्टकार्ड मिला, जिससे पता चला कि स्वामीजी ने सभी गुरुभाइयों को जीव-सेवा के कार्य में लग जाने का उपदेश दिया है।

श्री नाथद्वारा में विद्यालय की स्थापना

उदयपुर से एकलिंग होते हुए मैं श्री नाथद्वारा चला गया। वहाँ रघुनाथजी भण्डारी के घर में अतिथि हुआ। वहीं मेरा शालग्राम व्यास जी के साथ परिचय हुआ। ये 'श्रीनाथजी' के गोस्वामी के प्रधानमंत्री थे और दो बार विदेश हो आये थे। इनके पास एक बड़ा अच्छा ग्रन्थालय था। मैं उसमें से पुस्तकें लेकर पढ़ा करता था।

भण्डारीजी के घर में रहते हुए मैंने देखा कि उनका छोटा पुत्र पढ़ाई-लिखाई छोड़कर घूमते हुए खेलता रहता है। उसे पढ़ना-लिखना सिखाने के लिये भण्डारीजी से अनुरोध करने पर वे बोले, "महाराज, बड़े लड़के को पढ़ाने-लिखाने का बड़ा प्रयास किया था और बहुत धन भी खर्च किया। परन्तु वह मन्दबुद्धि है। भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा।"

छोटे पुत्र गोपालसिंह को मैंने स्वयं ही पढ़ाना आरम्भ किया। क्रमश: आठ-दस लड़के पढ़ने के लिये आने लगे। इससे मेरे अपने स्वाध्याय में बाधा पड़ी। उसी समय पूर्व-परिचित क्षीरोद चन्द्र मित्र नामक एक युवक मुम्बई से मेरे पास आया। क्षीरोद थोड़ा अंग्रेजी पढ़ना-लिखना जानता था। इन छात्रों को पढ़ाने के लिये मैंने उसे हिन्दी की शिक्षा दी।

शालग्राम व्यासजी की सलाह तथा सहायता से मैंने वहाँ एक मध्य-अंग्रेजी विद्यालय की स्थापना की। प्रति छात्र दो रुपये शुल्क निर्धारित करके क्षीरोद को स्कूल का वेतनभोगी शिक्षक नियुक्त किया गया। स्कूल को क्रमश: प्रगति करते देखकर और उसकी नींव को सुदृढ़ करने के बाद मैं वहाँ से ओंकारेश्वर की ओर रवाना हुआ।

ओंकारनाथ, इन्दौर, उज्जैन आदि स्थानों में

मेरी ओंकारनाथ के एक महाराष्ट्रीय विद्वान परमहंस से भेंट हुई। ये ओंकारनाथ से बड़ी दूर निवास करते थे। इसके पूर्व मैंने उनके समान वेदज्ञ नहीं देखा था।

ओंकारनाथ से मैं इन्दौर गया। वहाँ मैंने अट्ठारह दिन एक आसन पर बैठकर मूल वाल्मीकि-रामायण का पाठ किया।

इन्दौर से उज्जैन होते हुए मैं रतलाम पहुँचा। वहाँ एक सभा में एक विख्यात आर्यसमाजी संन्यासी का उपनिषदों के विरुद्ध व्याख्यान सुनकर मैंने उसका प्रतिवाद किया।

रतलाम से चितौड़ होते हुए मैं जयपुर पहुँचा। वहाँ से खेतड़ी राजा के मुंशी जगमोहन लाल के साथ फिर खेतड़ी चला आया। **(क्रमशः)**

भजन

राम-नाम रस सबते भारी

भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश'

राम-नाम रस सबते भारी ।
तीन लोक तिहुँ काल सुधासम सब विधि मंगलकारी ।।
जब चाहैं तब पियै सदा जन बाल-वृद्ध नर-नारी ।
राम-नाम में नित्य निहित है ऋद्धि-सिद्धि-निधि सारी ।।
राम-नाम की भक्ति शक्ति से कलि की गति-मति हारी ।
राम-नाम अविराम कीर्तन करत सदा सुविचारी ।।
राम-बिना भव-झाम न छूटत,जीवन होत विकारी ।
राम-नाम-रस-पान निरन्तर करत महेश पुरारी ।।
राम-नाम-रस सींचे जीवन होत कल्प-फुलवारी ।
है 'मधुरेश' राम कै महिमा सब नामन ते न्यारी ।।

भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्य

शरत चन्द्र श्रोत्रिय, जयपुर

भगवान का प्राकट्य कब होता है? अपने प्राकट्य के सम्बन्ध में भगवान स्वयं कहते हैं –

जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं दुष्टों के संहार, सज्जनों की रक्षा और धर्म के संस्थापना हेतु युग-युग में अवतार लेता हूँ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

(गीता ४. ७-८)

लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व महाभारत काल में श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने तत्कालीन समाज को नये स्वरूप में मानवता का, शाश्वत धर्म का और ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। हम किसी व्यक्ति के चरित्र को उससे सम्बन्धित उपाख्यानों का विश्लेषण करके समझ सकते हैं। जब हम कृष्ण के चरित्र का विश्लेषण करते हैं, तो हमें उनके संदेशों में दो विचार सर्वोपरि मिलते हैं – पहला है विभिन्न विचारों का सामंजस्य और दूसरा है अनासक्ति।

कृष्ण का कहना है कि अनुष्ठान, देवताओं की पूजा और दंतकथाएँ सभी ठीक हैं। क्यों? क्योंकि वे सभी उसी लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। अनुष्ठान, ग्रन्थ आदि, ये सभी ईश्वरप्राप्ति की शृंखला की कड़ियाँ हैं। एक ही केन्द्र से निकल कर बाहर इन शृंखलाओं में से किसी एक को पकड़ लो, तो तुम लक्ष्य तक पहुँच जाओगे। कोई एक पथ, दूसरे की अपेक्षा बड़ा नहीं है। धर्म के किसी भी रचनात्मक, लोकोपकारी पक्ष की, भर्त्सना न करो। इन शृंखलाओं में किसी एक को पकड़े रहो और वह तुम्हें केन्द्र में खींच ले जाएगी। शेष स्वयं तुम्हारा हृदय ही तुम्हें सिखा देगा। भीतर बैठा हुआ गुरु तुम्हें सभी दर्शनों की शिक्षा दे देगा, तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा।

इस संसार में हमें विविध प्रकार की उपासनाएँ देखने को मिलती हैं। जैसे, रोगी ईश्वर-पूजा स्वस्थ होने के लिये बड़ी निष्ठा से करता है। अपनी संपदा को खोनेवाला व्यक्ति, पुन: धन पाने के लिये बड़ी पूजा करता है। संकटग्रस्त संकटमुक्त होने के लिये पूजा करता है। लौकिक स्वार्थ हेतु पूजा करनेवालों की बड़ी लम्बी सूची है। लेकिन सर्वोच्च उपासना उस व्यक्ति की है, जो ईश्वर को ईश्वर के निमित्त ही प्रेम करता है। अन्य उपासनाएँ निम्न स्तरीय हैं। किन्तु कृष्ण किसी की निंदा नहीं करते। निश्चल खड़े रहने की अपेक्षा कुछ करना अधिक अच्छा है। जो व्यक्ति ईश्वर की उपासना आरम्भ कर देता है, उसका विकास क्रमश: होता रहता है और वह धीरे-धीरे ईश्वर से अनन्य प्रेम करने लगता है।

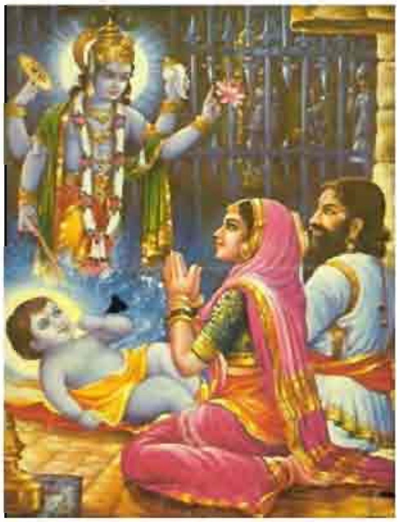

कर्म के सम्बन्ध में भगवान श्रीकृष्ण सदा कर्म करते रहने को कहते हैं और इस सम्बन्ध में रहस्यमय उद्गार प्रकट करते हुए कहते हैं –

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।।

(गीता ३.२२–२४)

– हे अर्जुन! मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कुछ प्राप्त करने योग्य वस्तु है, तब भी मैं कर्म करता रहता हूँ। क्योंकि हे पार्थ! यदि मैं सावधानी से कर्म न करूँ, तो बड़ी क्षति होगी। मनुष्य मेरा ही अनुसरण करते हैं और यदि मैं कर्म न करूँ, तो ये सब लोग नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगे और मैं समस्त प्रजा को नष्ट करनेवाला बन जाऊँगा।

इस प्रकार भगवान संसार को सजगता से अनवरत कार्य करने को प्रेरित कर रहे हैं।

अनासक्ति सुखमय जीवन का आधार है। अनासक्त होकर किया गया कर्म ठीक होता है। अनासक्त भाव से किया गया प्रेम सुखकर होता, कभी दुखदायक नहीं होता। 'मेरा'

का विचार लेकर कुछ न करो। कर्तव्य के लिये, कर्म कर्म के लिये करो।

श्रीकृष्ण सच्चे कर्मयोगी के लक्षण बताते हुए कहते हैं –

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।

(गीता ४.१८)

– वह जो प्रखर कर्म के मध्य महत्तम अकर्म और महत्तम अकर्म में प्रखर कर्म देखता है, वही मनुष्यों में बुद्धिमान है, वही समस्त कर्मों को ठीक-ठीक करनेवाला योगी पुरुष है। वही सच्चा कर्मी है, अन्य कोई नहीं।

हम अल्प-सा कर्म करते हैं और अपने को ध्वस्त कर डालते हैं। क्यों? क्योंकि हम उस कर्म के प्रति आसक्त हो जाते हैं। यदि हम कर्म में आसक्त न हों, तो उसी कर्म से हमें प्रसन्नता और अनन्त विश्राम भी प्राप्त होगा।

अनासक्ति के इस रूप तक पहुँच पाना बहुत कठिन है। अतएव श्रीकृष्ण हमें कर्म करने की एक दूसरी पद्धति दिखलाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिये कर्म करते हुए कर्मबन्धन से मुक्त होने का सबसे सरल मार्ग है, कर्म करो, किन्तु उसके फल की आकांक्षा मत करो, कर्मफल ग्रहण मत करो। कर्म में निहित हमारी भावनाएँ, हमारी तृष्णा हमें बाँधती है। यदि हम कर्मों के फलों को ग्रहण करते हैं, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, तो हमको कर्मफल से उत्पन्न सुख-दुखों को सहन करना ही पड़ेगा। किन्तु यदि हम कर्म अपने लिये न करके पूर्णरूपेण ईश्वर के लिए करते हैं, तो हमें कोई कर्मफल बाँध नहीं सकेगा, वही कर्म हमें ईश्वर के सन्निकट ले जायेगा। इसलिये भगवान कहते हैं –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

(गीता २.४७)

– तुम्हें कर्म करने का ही अधिकार है, उनके फलों में नहीं। इसलिए तुम कर्मफल का कारण मत बनो और कर्म न करने में तेरी आसक्ति ही हो।

आत्मसाक्षात्कार पथ के पथिकों का मार्गदर्शन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग का संदेश दिया। राजयोग और ज्ञानयोग तो उच्च अधिकारियों के लिए हैं। उन्होंने सर्वजनसुलभ कर्मयोग के प्रतिपादन के बाद भक्तियोग के सम्बन्ध में सहज मार्ग का निर्देश किया। भक्ति में भक्त भगवान को अपना सर्वस्व समर्पण करता है। उनके शरणागत होता है। उनको अपना तन-मन-धन सब कुछ निवेदित कर उनसे कृपा की प्रार्थना करता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब प्रभु की सेवा में समर्पित कर दो –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(गीता ९.२६)

– जो मुझे प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उसकी सारी वस्तुएँ मैं प्रसन्नता से ग्रहण करता हूँ।

भगवान परवर्ती अध्याय में मानव में ईश्वर की सत्ता और भगवान के प्रति शरणागति का उपदेश करते हैं –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(गीता १८.६१)

– हे अर्जुन ! ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान हैं और वह अपनी माया से सबको घुमाता रहता है।

किन्तु यदि तुम उनकी माया से बचना चाहते हो, तो उनकी शरण में जाओ –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

(गीता १८.६२)

– हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की शरण में जाओ, उनकी कृपा से तुम शान्ति और परम को प्राप्त करोगे।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।।

(गीता १०.४१)

– जो भी ऐश्वर्य-कान्ति-शक्तियुक्त कोई वस्तु है, उसको मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति समझो।

इस प्रकार भगवान ने साधना और अपनी प्राप्ति के बारे में बताया। हमें जब कभी कोई आत्मा मानव जाति के उत्थान करने के निमित्त संघर्ष करती दिखे, तो उसमें ईश्वरीय तेज की अभिव्यक्ति ही समझनी चाहिए।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने इस धरा पर अवतार लेकर शाश्वत धर्म की पुनः स्थापना की और मानव जीवन में स्थायी सुख-शान्ति हेतु परमेश्वर-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४४)

स्वामी भूतेशानन्द

(२६)

प्रश्न – श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा है – ''जो जिसका है, वह उसका है, युग-युग में अवतार होता है।'' इस वाणी का क्या तात्पर्य है?

महाराज – क्या ठाकुर 'कलमी का दल' नहीं कहते थे? एक को खींचने से सभी खींचे चले आते हैं। अवतार और उनके पार्षद परस्पर पूरक हैं। अवतार जब भी आते हैं, अपने लोक कल्याण रूपी कार्य को करने आते हैं, तब अपने साथ अन्तरंग पार्षदों को भी लेकर आते हैं। वे लोग अवतार के भाव की पुष्टि और विकास, प्रचार-प्रसार करते हैं। इसलिये कहते हैं – जो जिसका है, वह उसका है। अन्तरंग पार्षद उनके ही चिह्नित लोग हैं।

प्रश्न – महाराज! हमलोग देखते हैं कि श्रीमाँ ने मातृत्व के लिये अन्य सब कुछ की उपेक्षा की है। उन्होंने मातृत्व के सामने अन्य किसी चीज को महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने कहा है – विदेशी बच्चे भी उनकी ही सन्तान हैं, जैसे शरद उनका पुत्र है, वैसे ही अमजद भी उनका पुत्र है, इत्यादि। किन्तु श्रीमाँ के जीवन के अन्तिम दिनों में देखते हैं कि माँ अस्वस्थ हैं, सेवक माँ को दूध के साथ खिलाने के लिये पावरोटी लाए हैं। माँ कहती है – बाबा अब अन्तिम समय में मुसलमान के हाथ का स्पर्श किया हुआ क्यों दे रहे हो? श्रीमाँ को ऐसा व्यवहार करते हुए साधारणतया नहीं देखा गया। इसीलिये मन में खटकता है, मुसलमान भी तो उनकी सन्तान हैं।

महाराज – देखो, भौतिक शरीर धारण करने से शरीर के कुछ संस्कार रह जाते हैं। यह वैसा ही है। इससे उनका मातृत्व खंडित नहीं हो जाता है। ऐसा कर वे मुसलमानों से घृणा कर रही हैं, ऐसा भी नहीं है। इससे मुसलमान उनके मातृत्व के भागीदार नहीं रहे, ऐसा भी नहीं है। उस समय भी अमजद उनका ही पुत्र है। वे ब्राह्मण वंश की पुत्री हैं न, यह उसी संस्कार का प्रभाव है। भगवती शरीर में भी कुछ संस्कार रह जाता है। वैसा नहीं होने से मानव रूप धारण करना सम्भव नहीं होता है। देखोगे, उनका मातृत्व कभी खंडित नहीं हुआ। मेरा भी यह संस्कार था। इसे काटने में बहुत दिन लग गये। अभी भी पूर्ण रूप से दूर हुआ कि नहीं, कौन जानता है! मुसलमान ने बनाया है, इसलिये बचपन से ही हमलोग पावरोटी नहीं खाते थे। तब ब्राह्मणों में यह प्रथा बड़ी प्रबल थी। उसके बाद कलकत्ता में ब्राह्मणों द्वारा निर्मित पावरोटी बिकने लगा।

प्रश्न – महाराज! ठाकुर ने क्यों कहा है कि मातृभाव साधना की अन्तिम बात है?

महाराज – ठाकुर ने क्यों कहा है, यह कहना कठिन है। किन्तु यह भाव ठाकुर को अत्यन्त प्रिय था। मातृभाव बहुत मधुर भाव है। यह ठाकुर का विशेष योगदान है।

प्रश्न – महाराज! सुषुप्ति और समाधि में क्या भेद है, थोड़ा बताइये?

महाराज – मन संकल्प-विकल्पात्मक होता है। तीन अवस्थाओं में मन को विकल्प रहित देखा जाता है – सुषुप्ति, मूर्च्छा और निर्विकल्प समाधि। इन तीनों में ही विकल्प का अभाव रहता है। किन्तु सुषुप्ति और मूर्च्छा में जिस मन का लय होता है, वह अज्ञान में होता है। लय के बाद भी बीज रहता है। बीज अविद्या या अज्ञान का होता है। उसी अज्ञान के बीज को पकड़कर पुन: जाग्रत हो जाता है। किन्तु निर्विकल्प समाधि में मन ज्ञान में लय हो जाता है।

प्रश्न – महाराज! नैतिकता और आध्यात्मिकता में कैसा सम्बन्ध है?

महाराज – नैतिकता आध्यात्मिकता की आधारशिला, नींव है। नैतिकता को छोड़कर आध्यात्मिक जीवन सम्भव नहीं है। कठोपनिषद (१.२.२४) के इस श्लोक को याद करो –

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित: ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

यहाँ प्रज्ञा को और व्यापक अर्थ में ज्ञान-भक्ति के रूप में ग्रहण कर सकते हो।

– अच्छा महाराज, कई लोग तो आध्यात्मिकता को छोड़कर केवल नैतिक होने की बात ही करते हैं। वे लोगों को क्या तर्क देते हैं?

महाराज – हाँ, वे लोग भी तर्क देते हैं। उनका भी एक दर्शन है। उन लोगों के मतानुसार नैतिकता अर्थात् सत्य, अहिंसा आदि का पालन नहीं करने से सामाजिक प्रतिष्ठा, सामाजिक बन्धन, एक शब्द में सामाजिक सम्बन्ध टूट जाता है। मान लो, तुमने दुकान में जाकर किसी वस्तु को खरीदने के लिए दुकानदार को रुपये दिये, किन्तु दुकानदार ने सामान नहीं दिया या दुकानदार ने सामान दिया, किन्तु तुमने रुपये नहीं दिये। क्या इस प्रकार के व्यवहार से समाज टिकता है?

– और महाराज, जो लोग आध्यात्मिक जीवन-यापन करेंगे, वे लोग नैतिक क्यों होंगे? या हमलोग क्यों सत्यवादी होंगे?

महाराज – सत्य और नैतिकता के बिना जीवन उद्देश्यहीन हो जायेगा। सत्य-पालन नहीं करने से उद्देश्य स्थिर नहीं रहता है। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, ये सब ही धर्म हैं।

प्रश्न – महाराज! कहा गया है – ''तन्नो हंसः प्रचोदयात्।'' कहाँ प्रचोदयात् करें, कहाँ प्रेरण करें?

महाराज – शुभ-मार्ग पर, सन्मार्ग पर, मंगल पथ पर हमारी बुद्धि को प्रेरित करें। मोक्षप्राप्ति के मार्ग पर हमारी बुद्धि को प्रेरित करें।

– महाराज! क्या यह किसी ग्रन्थ का है या इसे स्वामीजी ने बनाया है?

महाराज – नहीं, नहीं, इसे स्वामीजी ने नहीं बनाया है, यह तो गायत्री मंत्र है।

– गायत्री मन्त्र में तो है – 'धियो यो न: प्रचोदयात्'। उसमें 'हंस' शब्द कहाँ है?

महाराज – वह परमहंस गायत्री में है।

(छान्दोग्य उपनिषद की बात हो रही थी कि उसमें कैसे एक-एक उपमा की सहायता से सूक्ष्म ब्रह्म वस्तु को समझाने का प्रयास किया गया है। महाराज कहते हैं – एक-पर-एक सुन्दर उपमा की सहायता से ब्रह्म वस्तु को समझाने का प्रयास किया जा रहा है, किन्तु श्वेतकेतु समझ नहीं पा रहे हैं। उसके बाद उन्हें कहा गया – वत्स! श्रद्धावान होओ। केवल उपमा के द्वारा समझना सम्भव नहीं है। श्रद्धा के बिना धारणा सम्भव नहीं है।

प्रश्न – महाराज! अभी जो श्रद्धा की बात कही गई, उस श्रद्धा को कैसे प्राप्त किया जाय?

महाराज – जब कोई कार्य करने को कहा जाय, तो इसका तात्पर्य है कि उसे किया जा सकता है, नहीं तो उसे करने को क्यों कहा जायेगा? जब श्रद्धावान होने को कह रहे हैं, इसका तात्पर्य है कि वह होने योग्य है, वह हुआ जा सकता है। कैसे हुआ जाय? गुरुजी जो कह रहे हैं, उसे रचनात्मक दृष्टि से ग्रहण करना होगा, विनाशात्मक दृष्टि से नहीं। अर्थात् एक सार्थक, सकारात्मक दृष्टि से ग्रहण करना। हमारी प्रवृत्ति सब कुछ नकारात्मक दृष्टि से लेने की है। वैसा नहीं करना है। उससे कुछ लाभ नहीं होता है।

प्रश्न – महाराज! भगवान के सम्बन्ध में हमारी कैसी धारणा होनी चाहिए?

महाराज – स्वामी विवेकानन्द ने कहा है – जैसे एक मेढक भगवान की कल्पना एक बहुत बड़े मेढक के रूप में करता है, एक साँढ़ बड़े साँढ़ के रूप में करता है, ठीक वैसे ही प्रत्येक की अपने सम्बन्ध में जो धारणा रहती है, वह भगवान को उसका एक बड़ा रूप समझता है। उनको, भगवान को विराट, शक्तिशाली इत्यादि रूप में सोचना चाहिए। पवित्रता ऐश्वर्य आदि जो सद्‌गुण हम चाहते हैं, भगवान उसके निधान हैं, भण्डार हैं। **(क्रमशः)**

प्रथम अवस्था में थोड़ा एकान्त में बैठकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। फिर जब ठीक ठीक अभ्यास हो जाए, तब कहीं भी ध्यान लग सकता है। जैसे, पेड़ जब छोटा रहता है, तब उसे बड़े यत्न से घेरकर, बेड़ा लगाकर बचाना पड़ता है, नहीं तो गाय-बकरियाँ उसे खाकर नष्ट कर देती हैं; परन्तु बाद में जब तना मोटा हो जाता है, तब उसमें दस गायें और बकरियाँ भी यदि बाँध दी जाएँ, तो भी पेड़ को कुछ हानी नहीं पहुँचती।– श्रीरामकृष्ण देव

मानसिक शुद्धि हेतु साधना

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

श्रीमाँ सारदा कहती थीं कि खाली मन शैतान का बैठकखाना होता है। इसलिए हमेशा अपने मन को काम में लगाये रखना चाहिए। नहीं तो, मन में बुरे विचार आते रहते हैं। हमलोगों के मन में आध्यात्मिक धारा अभी दुर्बल है, प्रबल नहीं है। मन में नाम-यश-पद की इच्छा है, प्रबल कामना है। मन में संसारी कामनायें बहुत प्रबल हैं, इसलिये मन में सतत अशुभ विचार आते रहते हैं। तब क्या करें? एक तो जैसाकि श्रीमाँ ने कहा है कि सदा कर्म करते रहें, खाली न बैठें। दूसरा, मन से अशुभ विचार हटाने के लिये भगवान से प्रार्थना करें। प्रार्थना करने से मन शुद्ध होता है। बुरे विचार नहीं आते और उनका प्रभाव चला जाता है।

यदि हम अपना आध्यात्मिक विकास चाहते हैं, तो कभी किसी से वैर नहीं करें और न ही किसी के प्रति वैर-भाव रखें। आध्यात्मिक जीवन में किसी दूसरे से शत्रुता करना और दूसरों के प्रति शत्रु-भाव का अनुभव करना, यह एक रोग है। इसलिए हर आध्यात्मिक साधक और साधिका को यह सोचना चाहिए कि वह किसी से क्यों शत्रुता करे? क्यों किसी के प्रति दुर्भाव रखे? शत्रुभाव उसे जीवन के लक्ष्य से बहुत दूर भटका देता है। यह लक्ष्यप्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा है। मन में किसी के प्रति शत्रु-भाव न आए, कोई दुर्भाव न आए, इसके लिए सतत आत्मनिरीक्षण करते रहें। आत्मनिरीक्षण से व्यक्ति अपने मन पर निगरानी रखता है। इससे मन सजग रहता है कि हमें कोई देख रहा है। इसलिए वह इधर-उधर नहीं भटकता। सधे हुए घोड़े की तरह सीधे लक्ष्य की ओर जाता है। अत: अपने जीवन में आत्मनिरीक्षण का अभ्यास करते रहना चाहिए।

साधक की एक दूसरी बड़ी बीमारी है ईर्ष्या। दूसरों का लाभ देखकर, दूसरों की प्रगति देखकर मन में बड़ी ईर्ष्या होती है। यह ईर्ष्या बहुत खतरनाक है। ईर्ष्या व्यक्ति को जीवित ही निरन्तर जलाती रहती है। ईर्ष्या साधक को विचलित कर देती है। इसलिए ईर्ष्या से बचें।

मन को साफ, शुद्ध रखने के लिए ही तो सारी साधनाएँ हैं। मन में राग-द्वेष, काम-क्रोधादि आकर मन को अशुद्ध कर देते हैं, इन्हें दूर कर, मन को स्वच्छ करने के लिये ही साधना की जाती है। क्योंकि स्वच्छ मन में, शुद्ध हृदय में भगवान का निवास होता है। हमारे बुरे विचारों और कर्मों के कारण मन मलिन हो गया, जिसके कारण हम भगवान से दूर हो गए और बार-बार जन्म-मरण के चक्र में फँसकर कष्ट पा रहे हैं। हमें जो दुख हो रहा है, वह हमारे पिछले जन्मों के कर्मों के कारण हो रहा है।

अत: हमें मन को शुद्ध करने के लिये, मन से कचरे को निकालने के लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान का नाम-जप करना चाहिए। भगवान के नाम-स्मरण से मन के दोष निकल जाते हैं और भगवान से प्रेम बढ़ने लगता है। मन की अशुद्धि से वह बहुत चंचल और अशान्त हो जाता है। आप सभी जानते हैं कि चंचल, अशान्त मन से साधना नहीं हो सकती। ऐसे चंचल मन से कभी जीवन में सुख-शान्ति नहीं मिलती है। इसलिए मन को शान्त रखने के लिए खूब जप करना चाहिए, भगवान का भजन करना चाहिए। स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज का एक भजन है, जिसे भक्त लोग बड़े प्रेम से गाते हैं – 'हरि भजन बिना सुख नाही रे।'

आध्यात्मिक साधना यानि हम आत्मसुधार करें। अपने स्वभाव में परिवर्तन लाएँ। पहले जैसे थे, वैसे ही न रह जाएँ। हमारा जीवन उत्तरोत्तर उन्नत हो। जीवन को उन्नत बनाने के लिये खूब प्रयत्न करें, पुरुषार्थ करें, अध्यवसाय करें। आलस्य छोड़कर प्रात: उठकर भगवान का नाम लें, सत्कर्म करें, भगवान के सन्तानों की सेवा करें। तब हमारे मन में सत्संस्कार पड़ेगा। अच्छे कर्म करने की प्रेरणा मिलेगी। तब भगवान प्रसन्न होंगे। जब भगवान प्रसन्न होंगे, तब हमें सुख मिलेगा, शान्ति मिलेगी, आनन्द मिलेगा। तब हम जब तक इस संसार में रहेंगे, आनन्द से रहेंगे और दूसरों को भी आनन्द प्रदान करेंगे। हम भगवान को लेकर रहेंगे। भगवान के सान्निध्य में रहेंगे। तब हमारा जीवन सार्थक हो जायेगा। OOO

भारतीय युवा : मेरी आशा के केन्द्र

डॉ. एस. एन. सुब्बा राव, नई दिल्ली

(डॉ. एस. एन. सुब्बा राव 'राष्ट्रीय युवा योजना' के संस्थापक हैं। इनका पूरा नाम सेलम नानजुदैया सुब्बा राव है। ९१वर्षीय सुब्बा राव जी एक गाँधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता हैं। इनके ही प्रयासों से चम्बल के मोहर सिंह, माधव सिंह, तहसिलदार सिंह आदि लगभग ५०० खूँखार डकैतों ने आत्मसमर्पण किया था। उन डकैतों को समाज की मुख्य धारा में लाने एवं उनके परिवारों के भरण-पोषण के लिए खादी-ग्रामोद्योग परियोजना उनके द्वारा स्थापित महात्मा गाँधी सेवा आश्रम, जौरा, मुरैना में संचालित है। ये लगभग ५० वर्षों से देश-विदेश में राष्ट्रीय एकता शिविरों द्वारा युवकों में भारतीय संस्कृति, सर्वधर्म-समभाव, राष्ट्रभक्ति और समाज-सेवा की भावना जगाने में सतत प्रयत्नशील हैं। -सं.)

युवावस्था मनुष्य जीवन का सावन है। यह अवस्था है अनुसंधान करने की, स्वप्न देखने की। स्वप्न ही युवाओं का निर्माण करते हैं। स्वप्नों की गुणवत्ता अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब युवा स्वप्न देखता है, तो उसे केवल अपने उज्ज्वल भविष्य के लिये नहीं देखना चाहिए, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र और मानवता के उज्ज्वल भविष्य के लिये स्वप्न देखना चाहिए। उनके स्वप्न उन्हें सितारों एवं अनन्त आकाश की ऊँचाइयों तक ले जाते है और इतिहास की दिशा बदल जाती है। उनके स्वप्नों की आधारशिला पर ही काल का निर्माण होता है। यही युवावस्था का सार है। युवा ओजस्वी विचारों से परिपूर्ण होते हैं। सही प्रोत्साहन एवं पर्याप्त मार्गदर्शन मिलने पर वे विलक्षण कार्य कर सकते हैं। युवाओं के पास नयी पहल करने की ऊर्जा होती है और गलतियों से सीखने का धैर्य होता है। उन्हें कार्यों की रूपरेखा तैयार कर स्वयं निर्णय लेने और क्रियान्वयन का अवसर प्रदान करना, उन्हें जीवन की कठिन परिस्थितियों का सामना करने के लिए तैयार करता है। किसी भी राष्ट्र में, समाज के किसी वर्ग में यदि परिवर्तन करना हो, वह युवाओं के द्वारा ही होता है। उल्लेखनीय है कि देशप्रेम और सामाजिक पुनर्जागरण हेतु अदम्य उत्साह युवाओं में स्वत: विद्यमान रहता है। युवा शक्तिपुंज है, किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि इस शक्ति का उपयोग किस प्रकार हो रहा है। बहुत से लोग युवा-शक्ति का उपयोग विध्वंसकारी प्रयोजन हेतु करते हैं, जो बड़ा भयानक है। युवाओं को विध्वंसकारी शक्तियों के पाश में नहीं फँसना चाहिए। उनकी ऊर्जा रचनात्मक ढंग से सही दिशा में, समाज कल्याण हेतु क्रियान्वित होनी चाहिए। अगर युवा शक्ति दृढ़ संकल्पित हो, लक्ष्य निर्धारण करे और अपने सपनों को साकार करने के लिए अग्रसर हो, तो विध्वंसकारी शक्तियों के ढाँचे को धूमिल किया जा सकता है और समाज सभ्यता और विकास के क्षेत्र में नये शिखर तक पहुँच सकता है।

युवा समाज सुधार में अहम् भूमिका निभा सकता है। सम्पूर्ण विश्व में, सभी क्षेत्रों में परिवर्तन के प्रधान प्रतिनिधि युवा ही है। इतिहास के सभी सामाजिक आन्दोलनों का केन्द्र युवा ही रहे हैं। उन्हें अपने आपको इस सामाजिक दायित्व को वहन करने के लिये तत्पर करना चाहिए।

विश्व के युवाओं का विशेष सर्वाधिक अनुपात भारत में ही विद्यमान है। यह युवाशक्ति हमारी महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति है, जिसके आधार पर हम भारत के विश्वगुरु होने की आकांक्षा कर सकते हैं। अगर भारतीय युवा एकत्रित होकर स्वयं को राष्ट्र-निर्माण के लिये समर्पित करें, तो विश्व की कोई भी शक्ति हमें विकास के पथ पर अग्रसर होने से नहीं रोक सकती।

युवा पूर्णत: प्रयोगशील होते हैं और उनकी प्रतिभाओं के सदुपयोग से भारत एक सम्यक् समृद्ध राष्ट्र बनेगा। किन्तु सबके मानस-पटल पर सबसे पहले यह प्रश्न उभरता है- हमारे युवा हैं कहाँ? क्या उनका सही मार्गदर्शन हो रहा है? क्या उनके विकास हेतु सम्यक् अनुकूल वातावरण का निर्माण हो रहा है? हमें इन सभी प्रश्नों का सजग होकर विश्लेषण करना होगा और इनके उत्तर में ही राष्ट्र का विकास निहित है।

हमारे समक्ष अनेकों आदर्श विद्यमान हैं। हम उनसे प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। महात्मा गाँधी राष्ट्र के युवाओं के लिये अत्यन्त प्रेरणास्रोत हैं। महात्मा गाँधी समाज सुधार की गतिशीलता को समझते थे और युवाशक्ति द्वारा इसका क्रियान्वयन उन्होंने सफलतापूर्वक किया। वे युवाओं में निहित अपार क्षमताओं से परिचित थे। युवाओं में स्वभावत: ही एक-दूसरे की भावनाओं को समझने की शक्ति एवं दया-भावना होती है, जो उन्हें सामाजिक परिवर्तन का उपयुक्त उपकरण बनाती है। नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य ही सृजनात्मक सामाजिक संरचना को यथोचित आधार

प्रदान कर सकते हैं। युवावर्ग ही समाज का ऐसा अंग है, जहाँ आदर्शवाद की शक्ति अब भी विद्यमान है। युवाओं को समाज सुधार का सर्वोत्तम उपकरण मानने का प्रमुख कारण यह है कि गाँधीजी की यह अवधारणा थी कि युवा नि:स्वार्थी होते हैं। इसी आधार पर गाँधीजी ने युवाओं को प्रेरित किया तथा सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत होने का उनमें विश्वास जाग्रत किया।

महात्मा गाँधी एवं उनके सिद्धान्त हमारे सभी कार्यों के लिये प्रेरणास्रोत हैं। महात्मा गाँधी कहते थे कि किशोरावस्था में गढ़ी गई आदतें बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। गाँधीजी ने कहा था – "जियो इस तरह जैसे कल ही मरना हो, सीखो ऐसे, जैसे सदा जीवित रहना हो।" जीवन और समाज के प्रति गाँधीजी का दृष्टिकोण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत प्रासंगिक है। हमें अपने जीवन का पुनर्निर्माण गाँधीजी के आदर्शों पर करना चाहिए, जो हमारे लिये व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से कल्याणकारी हैं।

समय बदल रहा है। हम वैश्विक समाज में रह रहे हैं। हमें बहुत-सी चुनौतियों का सामना करना है। गरीबी, भेदभाव, आतंकवाद आदि वर्तमान समय की प्रमुख चुनौतियाँ हैं। हमारा सपना होना चाहिए एक ऐसा विश्व जो गरीबी, बेरोजगारी से उत्पीड़ित न हो, जाति-वर्ण के आधार पर भेद-भाव से मुक्त हो। इस स्वप्न को साकार करने में युवा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जब युवाओं की ऊर्जा, बुद्धि और संसाधनों का सही उपयोग किया जाएगा, तभी राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा। गाँधीजी के जीवन-मूल्य वर्तमान समय में अति प्रासंगिक हैं। प्रश्न यह है कि हम इन मूल्यों को युवाओं और आनेवाली पीढ़ी तक कैसे पहुँचाते हैं। गाँधीजी के ग्राम स्वराज, अहिंसा एवं सत्याग्रह आदि विचारों एवं सिद्धान्तों के उचित क्रियान्वयन की आवश्यकता है। अहिंसा के द्वारा न्याय प्राप्त करने के गाँधीजी के सिद्धान्त को सम्पूर्ण विश्व स्वीकार कर रहा है। ब्राजील पुलिस हिंसा को नियंत्रित करने हेतु महात्मा गाँधी के कार्यों एवं सिद्धान्तों का अध्ययन कर रही है।

आज सब कुछ युवाओं पर निर्भर है। आवश्यकता है युवाओं के चरित्र-निर्माण और उनकी परिकल्पना को विकसित करने हेतु सम्यक् प्रयास करने की, जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण हो सके। हमें उन मूलभूत आधारों पर, उन विचार और कर्म के मानदण्डों पर बल देना होगा, जिनसे एक व्यक्ति और राष्ट्र का निर्माण होता है।

सभी युवाओं को एक ऐसे सुदृढ़ और उन्मुक्त प्रजातान्त्रिक भारत के निर्माण के लिए एकजुट होना चाहिए, जहाँ हर नागरिक के पास विकास के समान अवसर उपलब्ध होंगे, जहाँ धन और सामाजिक स्तर की असमानताएँ विलुप्त हो जाएँगी, जहाँ जनमानस की शक्ति सृजनात्मक एवं परस्पर सहयोग की ओर प्रयत्नशील होगी। एक ऐसा भारत जहाँ साम्प्रदायिकता, अलगाववाद, छुआछूत, कट्टरता और मनुष्य का मनुष्य के द्वारा उत्पीड़न के लिए कोई स्थान नहीं होगा । देश के राजनैतिक एवं आर्थिक पहलुओं में धर्म का हस्तक्षेप नहीं होने देना चाहिए। राष्ट्रीय युवा योजना इस दिशा में एक सार्थक कदम है। इस योजना ने समाज पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला है और हजारों युवाओं को गाँधीजी की विचारधारा के अनुरूप राष्ट्र-निर्माण की ओर अग्रसर किया है। मैं इस योजना की सफलता की मंगल कामना करता हूँ। यह वर्तमान समय की आवश्यकता है। ○○○

युवा शक्ति से ही होता राष्ट्र महान

प्राचार्य ओ.सी.पटले

युवाशक्ति ही करती है राष्ट्र को दैदिप्यमान ।
युवाशक्ति के बल पर ही बनता राष्ट्र महान ।।
देश का युवा हो निर्भय सिंह समान ।
देशभक्ति से पूर्ण हो उसका तन-मन-प्राण ।।
ऐसे युवक ही करते हैं कोई कार्य महान ।
ऐसे युवकों से होता मानव का कल्याण ।।
प्रभु राम को जब मिले युवा वीर हनुमान ।
तभी हुआ वैदेही का अन्वेषण आसान ।।
चाणक्य को मिला युवा चन्द्रगुप्त का साथ ।
तभी मौर्य साम्राज्य का हुआ उदय-उत्थान ।।
श्रीरामकृष्ण को मिले युवा नरेन्द्रनाथ ।
बना विवेकानन्द किए जीवन धन्य कृतार्थ ।।
गुरु के शाश्वत सन्देशों का जग में किया प्रचार ।
स्वामीजी ने ही किया युवकों में शक्ति-संचार ।।
जग के किसी भी क्रान्ति में है युवकों का योगदान ।
युवाशक्ति से भारत पायेगा विश्वगुरु-स्थान ।।

दृग्-दृश्य-विवेकः (३)

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यत: 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.।)

चित्-छाया का तादात्म्य

चिच्छायावेशतो बुद्धौ भानं धीस्तु द्विधा स्थिता ।
एकाहंकृतिरन्या स्यादन्तःकरण-रूपिणी ॥६॥

अन्वयार्थ – **बुद्धौ** बुद्धि में **चिच्छाया** चेतना की छाया **आवेशतः** के प्रवेश से **भानं** बोध **भवति** होता है; **धीः** बुद्धि **तु द्विधा** दो तरह से **स्थिता** स्थित रहती है, **एका** एक **अहंकृतिः** अहंकार (कहलाती) **स्यात्** है (और) **अन्या** दूसरी **अन्तःकरण-रूपिणी** अन्त:करण के रूप में।

भावार्थ – बुद्धि में चेतना की छाया के प्रवेश से ज्ञान होता है। बुद्धि दो तरह से स्थित रहती है, (इनमें से) एक अहंकार और दूसरी अन्त:करण के रूप में प्रतिभात होती है।

छायाहंकारयोरैक्यं तप्ताय:पिण्डवन्मतम् ।
तदहंकार-तादात्म्याद्देहश्चेतनतामगात् ॥७॥

अन्वयार्थ – (ज्ञानियों का) **मतम्** मत है कि **तप्त-अयः पिण्डवत्** तप्त लौहपिण्ड के समान ही **छाया-अहंकारयोः** (चैतन्य की) छाया तथा अहंकार का **ऐक्यं** तादात्म्य होता है; **तत्** इस **अहंकार** अहंकार के **तादात्म्यात्** तादात्म्य से **देहः** देह **चेतनताम्** चेतनता को **अगात्** प्राप्त हुआ है।

भावार्थ – (ज्ञानियों का) मत है कि (चैतन्य की) छाया तथा अहंकार का तादात्म्य भाव – अग्नि तथा लौहपिण्ड के तादात्म्य के समान है। (चिदाभास तथा) अहंकार के तादात्म्य से शरीर चेतनता को प्राप्त हुआ है।

अहंकारस्य तादात्म्यं चिच्छाया-देह-साक्षिभिः ।
सहजं कर्मजं भ्रान्तिजन्यञ्च त्रिविधं क्रमात् ॥८॥

अन्वयार्थ – **अहंकारस्य** अहंकार का **चिच्छाया-देह-साक्षिभिः** चिदाभास, देह तथा साक्षी के साथ **तादात्म्यं** तादात्म्य होने से **क्रमात्** क्रमश: **सहजं** सहज, **कर्मजं** कर्मजनित **च** तथा **भ्रान्तिजन्यं** भ्रान्तिजनित – **त्रिविधं** तीन प्रकार के (तादात्म्य) **भवति** होते हैं।

भावार्थ – चिदाभास, देह तथा साक्षी के साथ अहंकार का तादात्म्य होने से – एक-एक करके सहज, कर्मजनित तथा भ्रान्तिजनित – ये तीन प्रकार के (तादात्म्य होते हैं)।

तादात्म्य का नाश

सम्बन्धिनोस्सतोर्नास्ति निवृत्तिस्सहजस्य तु ।
कर्मक्षयात् प्रबोधाच्च निवर्तेते क्रमादुभे ॥९॥

अन्वयार्थ – **सम्बन्धिनोः** (चैतन्य का आभास तथा अहंकार, इन) दोनों सम्बन्धियों के **सतोः** रहते हुए **सहजस्य** सहज-स्वाभाविक (तादात्म्य की) **निवृत्तिः** निवृत्ति **नास्ति** नहीं होती, **तु** परन्तु **कर्मक्षयात्** कर्मफलों का क्षय **च** तथा **प्रबोधात्** ज्ञान का उदय हो जाने पर, **उभे** दोनों सम्बन्धियों का **क्रमात्** क्रमश: **निवर्तेते** लोप हो जाता है।

भावार्थ – (चैतन्य का आभास तथा अहंकार, इन) दोनों सम्बन्धियों के रहते हुए सहज-स्वाभाविक (तादात्म्य) की निवृत्ति नहीं हो सकती; कर्मफलों का क्षय तथा ज्ञान का उदय हो जाने पर, इन दोनों सम्बन्धियों का क्रमश: लोप हो जाता है।

अहंकार का लय

अहंकार-लये सुप्तौ भवेद्देहोऽप्यचेतनः ।
अहंकार-विकासार्धः स्वप्नः सर्वस्तु जागरः ॥१०॥

अन्वयार्थ – **सुप्तौ** निद्रावस्था में, **अहंकार-लये** अहंकार का लय हो जाने पर **देहः** देह **अपि** भी **अचेतनः** अचेतन **भवेत्** हो जाती है; **अहंकार-विकास-अर्धः** अहंकार का आधा विकास **स्वप्नः** स्वप्न **भवति** है, **तु** परन्तु **सर्वः** पूर्ण (विकास) **जागरः** जाग्रत अवस्था **भवति** है।

भावार्थ – निद्रावस्था में, अहंकार का लय हो जाने पर देह भी अचेतन हो जाती है; अहंकार का आधा विकास स्वप्न है, परन्तु पूर्ण (विकास) जाग्रत अवस्था है। **(क्रमशः)**

समाचार और सूचनाएँ

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो धर्म-महासभा में प्रदत्त व्याख्यान के १२५वें स्मरणोत्सव के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ-मिशन के केन्द्रों द्वारा आयोजित कार्यक्रम

रामकृष्ण मठ, वाराहनगर, कोलकाता ने १५ से २१ मार्च के अन्तर्गत आश्रम के निकट विद्यालयों में चार व्याख्यान आयोजित किए, जिसमें २६४ विद्यार्थियों एवं ३० शिक्षकों ने भाग लिया। **रामकृष्ण मिशन आश्रम, हातामुनिगुड़ा, उड़िसा** में कोरापुट जिले के विद्यालय में १ फरवरी को लिखित प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता आयोजित हुई, जिसमें १४० विद्यार्थियों ने भाग लिया। २६ एवं २७ फरवरी को आश्रम में दो युवा सम्मेलन हुए, जिसमें ३५० युवा उपस्थित थे। २६ फरवरी को ही आश्रम के समीप बालिका उच्च विद्यालय में व्याख्यान हुआ, जिसमें ४०० बालिकाओं एवं शिक्षकों ने भाग लिया। **रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन आश्रम, मालदा** में १० मार्च को आयोजित युवा सम्मेलन में आठ महाविद्यालयों के ४७० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। **रामकृष्ण मिशन, श्रीनगर** में २४ मार्च को बारामुला जिले के बालिका अनाथालय में सांस्कृतिक प्रतियोगिताएँ आयोजित हुई, जिसमें ६० विद्यार्थियों ने भाग लिए। प्रतियोगिता के बाद व्याख्यान एवं पुरस्कार दिए गए। **रामकृष्ण मठ, मैंगलूरू** में मार्च में १४ महाविद्यालयों में व्याख्यान हुए जिसमें २७५० विद्यार्थियों ने भाग लिया। **रामकृष्ण आश्रम, मैसूर** में १ से १५ मार्च के बीच पाँच कार्यशालाएँ आयोजित हुईं, जिसमें ९ महाविद्यालयों से १०४४ छात्र उपस्थित थे।

राजस्थान रामकृष्ण विवेकानन्द भाव-प्रचार संवाद

११, १२ मई, २०१९ को **रामकृष्ण विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद राजस्थान** का वार्षिक सम्मेलन बीकानेर में सम्पन्न हुआ, जिसमें भावधारा के अध्यक्ष और रामकृष्ण विवेकानन्द स्मृति मन्दिर, खेतड़ी के सचिव स्वामी आत्मनिष्ठानन्द, भावधारा उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन, जयपुर के सचिव स्वामी देवप्रभानन्द, रामकृष्ण मिशन शिमला के सचिव और पर्यवेक्षक स्वामी सत्यस्थानन्द, भावधारा के संयोजक श्री ओ.पी.एन.कल्ला जी ने सत्र को संबोधित किया।

राजस्थान रामकृष्ण विवेकानन्द भावप्रचार परिषद के केन्द्रों द्वारा विविध कार्यक्रम हुए – १० अप्रैल, २०१९ से १६ अप्रैल, २०१९ तक राजस्थान के भाव-प्रचार केन्द्रों में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी अव्ययात्मानन्द और स्वामी प्रपत्त्यानन्द के सान्निध्य में कई कार्यक्रम हुए। **रामकृष्ण विवेकानन्द सेवा समिति, कोटा** में १० अप्रैल को शाम ७ बजे से ८.३० बजे तक गृहस्थ जीवन में सफलता पर प्रवचन हुआ। ११ अप्रैल को ११ बजे से १२.३० बजे तक राजकीय आई.टी.आई., साँगोद में व्यक्तित्व विकास एवं विद्यार्थी जीवन में सफलता पर व्याख्यान हुए। वहीं आई.टी.आई, साँगोद, केलवारा और शाहाबाद के शिक्षकों के साथ प्रश्नोत्तर हुआ। शाम ७ बजे भगवान राम एवं हनुमान का जीवन चरित्र और स्वाध्याय पर प्रवचन हुए। होस्टल सन्मति रेजीडेंसी, कुन्हाड़ी, कोटा में ए.आई.पीमटी एवं आई.आई.टी के छात्रों के साथ प्रश्नोत्तर हुआ। १२ अप्रैल को प्रात: ९.३० बजे एन.पी.एस. कान्वेन्ट स्कूल में और १०.३० बजे लार्ड कृष्णा पब्लिक सीनियर स्कूल में छात्रों के चरित्र-निर्माण पर व्याख्यान हुए। शाम ७ बजे भक्तों हेतु आध्यात्मिक प्रवचन हुए। **रामकृष्ण सेवा समिति, उदयपुर** में १४ अप्रैल को रामनवमी के उपलक्ष्य में भगवान श्रीराम पर व्याख्यान हुए। **रामकृष्ण सेवाश्रम, जोधपुर** में १६ अप्रैल, २०१९ को प्रतियोगिता में विजेता छात्रों को पुरस्कार प्रदान किया गया और शाम को भक्तों के लिए प्रवचन हुए।

रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई, छत्तीसगढ़ में २९ अप्रैल, २०१९ को साधु-निवास का शिलान्यास स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ, जिसमें ९ संन्यासी उपस्थित थे। **सारदा विद्यामन्दिर, भिलाई** में २९ अप्रैल, २०१९ को ही स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी अव्ययात्मानन्द जी और स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी ने बच्चों को सम्बोधित किया। बच्चों को स्वच्छता अभियान की प्रेरक डोकुमेन्ट्री फिल्म दिखाई गई। ○○○